स्वर-विज्ञान

ज्योतिष-तन्त्र-योग की त्रिवेणी

कल्याण मन्दिर प्रकाशन
इलाहाबाद-२११००६

तन्त्र-योग-ज्योतिष की त्रिवेणी

स्वर-विज्ञान

(ज्ञान-खण्ड एवं प्रयोग-खण्ड)

* * *

लेखक

श्री अतुल टण्डन

श्री रमादत्त शुक्ल

स्वामी श्री शाश्वतानन्द जी सरस्वती

* * *

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज - २११००६

• **प्रकाशक**
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपी-देवी मार्ग,
प्रयाग-राज-२११००६ (उ०प्र०)
दूर-भाष : ५०२७८३

• तृतीय संस्करण

माघ पूर्णिमा, २०५६ वि० - २० फरवरी, २०००

• मूल्य ७५-०० रु०

• सर्वाधिकार सुरक्षित

• **मुद्रक**
परा वाणी प्रेस
अलोपी-देवी मार्ग,
प्रयाग-राज - २११००६ (उ०प्र०)

अनुक्रमणिका

ज्ञान-खण्ड : श्री अतुल टण्डन

(१) **स्वर-परिचय एवं पञ्च-तत्त्व** १-४२

१ स्वर-विज्ञान...६, २ स्वर-माहात्म्य...१०, ३ स्वर-ज्ञान के बिना ज्योतिष-ज्ञान अधूरा...१३, ४ स्वर-परिचय...१४, ५ स्वरों की अवस्था...१७, ६ दाहिने स्वंर के कार्य...१७, ७ बाँएँ स्वर के कार्य...१६, ८ मध्य स्वर...२१, ६ स्वर का प्रवाह...२२, १० स्वरोदय-काल...२४, ११ शुभाशुभ फल...२६, १२ स्वर-परिवर्त्तन...२७, १३ तत्त्व-ज्ञान...२६, १४ तत्त्वोदय...३०, १५ तत्त्व-ज्ञान की रीति...३२, १६ तत्त्वों के गुण...३५, १७ तत्त्व-साधना...४०, १८ तत्त्वों का महत्त्व...४२।

(२) **स्वरोदय और योग** ४३-८८

१ शरीर-तत्त्व...४३, २ नाड़ी-ज्ञान...४५, ३ कुण्डलिनी-तत्त्व..४६, ४ चक्रादि-वर्णन...५३, ५ षोडशाधार...६२, ६ त्रि-लक्ष्य...६३, ७ व्योम-पञ्चक...६३, ८ हठ-योग और स्वर...६४, ६ नेति...६५, १० नौली...६७, ११ नाड़ी-शोधन...७०, १२ प्राण और प्राणायाम...७१, १३ वायु और वायु के गुण...८२, १४ हंस-तत्त्व...८५।

प्रयोग-खण्ड : श्री अतुल टण्डन

(३) **स्वर-विज्ञान के प्रयोग** ८६-११२

१ अभीष्ट कार्य-सिद्धि...८६, २ अनुकूलन-वशीकरण...८६, ३ शत्रु-वशीकरण...६०, ४ स्त्री-वशीकरण..६१, ५ दाम्पत्य-सुख...६२, ६ मनोवाञ्छित

सन्तान...६२, ७ भाग्योदय..६३, ८ सन्धि..६४, ९ अग्नि-शान्ति...६४, १० औषधि...६४, ११ दीर्घायु और चिर-यौवन...६५, १२ नीरोगावस्था...६५, १३ उदर-विकार...६५, १४ ज्वर...६५, १५ दर्द...६६, १६ दमा...६६, १७ स्वर और स्वास्थ्य...६६, १८ स्वर-साधना से दीर्घायु-प्राप्ति...१०१, १९ स्वर-साधना से विविध सिद्धियाँ...१०५, २० स्वरोदय और पुनर्जन्म...१०६, २१ छाया-पुरुष साधना..११०, २२ मन्त्र-साधना और षट्-कर्म...११२।

(४) **स्वर-ज्योतिष** ११३-१३०

१ स्वर-विद्या द्वारा फलादेश...११३, २ तत्त्व का विचार...११३, ३ स्वर-विद्या द्वारा प्रश्नोत्तर...११६, ४ उपसंहार...१२६।

सूक्ष्म वायु-परिवर्तन-विज्ञान : स्वामी शाश्वतानन्द सरस्वती

(५) **सूक्ष्म वायु-परिवर्तन-विज्ञान** १३१-१५२

१ स्थूल वायु-परिवर्तन और सूक्ष्म वायु-परिवर्तन...१३१, २ सदाशिव-प्रणीत सूक्ष्म वायु-परिवर्तन-विज्ञान...१३२, ३ शरीरस्थ वायु के आधार-स्थल...१३३, ४ तीन नलिकाएँ— इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा...१३४, ५ गौण प्राण-वायु एवं मुख्य प्राण-वायु...१३५, ६ इड़ा और पिङ्गला का प्रवाह एवं सात वार...१३८, ७ सुषुम्णा-प्रवाह और लौकिक कार्यों का निषेध...१४१, ८ स्वस्थ शरीर के परिप्रेक्ष्य में इड़ा-पिङ्गला-प्रवाह...१४२, ९ सूर्य-स्वर और चन्द्र-स्वर का परिवर्तन...१४३, १० स्वर-परिवर्तन हेतु नाड़ी-शोधन का महत्त्व...१४४, ११ रोग एवं शरीर-विषयक आरोग्य-प्रकरण...१४४, १२ शरीर के ३२ आधारों में ध्यान से आरोग्य-लाभ...१४९।

* * *

परिचय

'आत्म-ज्ञान' के लिए **शरीर का ज्ञान** अत्यन्त आवश्यक है। शरीर **आत्मा का वास-स्थान** है। अतः **शरीर— देवालय** है। शरीर जगत् के साथ परिवर्तन-शील है, किन्तु मिथ्या नहीं है। शरीर **आत्मा की अधिष्ठान-भूमि** है। आत्मा जब सत्य है, तब उसकी अधिष्ठान-भूमि शरीर भी सत्य है। वह असत्य नहीं हो सकता। **भगवान् शिव** का कथन है कि— 'इस शरीर में **सातों द्वीपों** के सहित **मेरु-पर्वत** विद्यमान है। **सरिता, सागर, पहाड़, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि, मुनि, नक्षत्र, ग्रह, पुण्य-तीर्थ-क्षेत्र, पीठ** और **पीठ-देवता** सभी शरीर में स्थित हैं। सृष्टि-संहार करनेवाले **चन्द्र-सूर्य** इस देह में ही भ्रमण करते रहते हैं। **आकाश, वायु, अग्नि, जल** और **पृथ्वी**— ये पाँचों तत्त्व भी देह में ही विद्यमान हैं। तीनों लोक के सभी प्राणी शरीर में स्थित **सुमेरु पहाड़** के आश्रय में रहते हुए अपने-अपने व्यवहार में प्रवृत्त हैं।' (देखिए, **'शिव-संहिता'**, २।१।४)।

जिस प्रकार **देवालय** को सर्वदा परिष्कृत रखना होता है, उसी प्रकार **शरीर-रूपी देवालय** को भी परिष्कृत रखना चाहिए। **शरीर-रूपी देवालय** को—१ बाहर और २ भीतर दोनों प्रकार से परिष्कृत करना होता है। स्वास्थ्य-रक्षा के **सहज, सरल एवं सूक्ष्म नियमों** के पालन और **स्नान-शौचादि** द्वारा शरीर बाह्य-रूप में तथा **दुश्चिन्ताओं, कुत्सित भावनाओं का त्याग** करने एवं **आत्म-ज्ञान की वृद्धि** से आभ्यन्तर में परिष्कृत होता है।

मानव-शरीर ठीक सितार की तरह है। **'से'** (तीन वाची) **'तार'** (तन्त्री)। अन्तर इतना है कि सितार का अलावू नीचे रहता है और शरीर-रूपी सितार का अलावू—**मस्तिष्क (सहस्रार)** ऊर्ध्व-भाग में है। सितार को अंगुली द्वारा मेजराफ के सहारे

मृदु-मृदु आघात कर बजाना होता है। इसी तरह **देह-रूपी सितार** को **वायु-शक्ति (प्राण)** के आघात द्वारा बजाना होता है। जिस प्रकार सितार में घाट आदि के परिष्कार के द्वारा **'स्वर'** का प्रादुर्भाव होकर **'लय'** बनंती है, ठीक उसी प्रकार **देह-रूपी सितार** में **प्राण-शक्ति** के मुख्य आधारों के परिष्कार के द्वारा **प्रकृत नाद** उत्थित होकर **लयावस्था की प्राप्ति** होती है। **महर्षि नारद** ऐसा ही करते थे। **भगवान् श्रीकृष्ण** की **बाँसुरी** भी उनका शरीर ही थी। उनके **शरीर-रूपी सितार** से निःसृत ध्वनि को सुनकर चराचर जगत् मुग्ध हो जाता था।

तन्त्र-शास्त्र के अनुसार मानव-देह में सात मुख्य आधार हैं—१ **सहस्रार,** २ **आज्ञा,** ३ **विशुद्ध,** ४ **अनाहत,** ५ **मणिपुर,** ६ **स्वाधिष्ठान** और ७ **मूलाधार**। इन सातों का संयोग **इड़ा, पिङ्गला** और **सुषुम्णा** तीन नाड़ियों द्वारा होता है। ये ही शरीर की **'त्रि-तन्त्री'** कहलाती हैं। ये **सत्व, रज** और **तम**— त्रय-गुणों की द्योतक हैं।

मेरु-दण्ड के बाहर वाम-भाग में चन्द्र-प्रभा-विशिष्ट **'इड़ा'**-नाड़ी है। दक्षिण-भाग में सूर्य-प्रभा-विशिष्ट **'पिङ्गला'**-नाड़ी है। मेरु-दण्ड के मध्य भाग में चन्द्र-सूर्य-अग्नि तीनों की प्रभा-विशिष्ट त्रि-सम-तुलत्व-मयी **'सुषुम्णा'**-नाड़ी है। यह **'सुषुम्णा'— मूलाधार से लेकर आज्ञा-चक्र तक** विस्तृत है। वास्तव में **सुषुम्णा** को **इड़ा-पिङ्गला** नाड़ियाँ छः स्थानों में अंग्रेजी के 8 के समान वेष्ठित किए हुए हैं। इसी वेष्ठन के द्वारा **आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान** तथा **मूलाधार** षट्-चक्र-रूपी आधार-स्थल प्रस्तुत होते हैं।

मानव-देह के उपर्युक्त **षट्-आधारों** एवं **त्रि-तन्त्री— इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा** में **प्राण-वायु** स्थूल-सूक्ष्म-कारण रूप में प्रवहमान है, जिसके फल-स्वरूप जीवों का जीवन रक्षित रहता है। **मुख्य प्राण-वायु— सुषुम्णा** के मध्य **चित्रिणी नाड़ी** के अन्तर्गत **अनाहत-चक्र**-रूपी आधार में स्थायी रूप से निवास करती है। इस **मुख्य प्राण-वायु** का ही परिणाम **स्थूल प्राण-वायु** है, जिसे हम **श्वासोच्छ्वास** द्वारा ग्रहण और त्याग करते हैं। **मुख्य प्राण-वायु** के कुल ४९ परिणाम हैं, जो स्थूल-देह का सञ्चालन करते हैं और उसे स्थित रखते हैं।

मन एक प्रकार का आकाश है, जिसमें सभी पदार्थ प्रवेश करते हैं, ठहरते हैं और चले जाते हैं। **मन** में कोई भी क्रिया नहीं है। जो भासित होता है, वह **'प्राण'** से उत्पन्न है। **'श्रुति'** का मत है कि **'मन'—मन्त्री** है और **'प्राण'—राजा** है। **'योग-वाशिष्ठ'** में रथ-रथी का सम्बन्ध बताया है। **'मन'—रथ** है और **'प्राण'—रथी।** जिस प्रकार रथी रथ को चलाता है, परन्तु रथ ही रथी के जाने का साधन है, उसी प्रकार **मन** और **प्राण** अन्योन्याश्रित हैं। **'योग-वाशिष्ठ'** कहता है—

मनसः स्पन्दनं प्राणः, प्राणस्य स्पन्दनं मनः।

संक्षेप में लौकिक परिवेश में मनुष्य **देह के षट्-आधारों** एवं **त्रि-तन्त्री— इड़ा, पिङ्गला** और **सुषुम्णा** में सुरक्षित, सञ्चालित तथा सम्पादित उपर्युक्त लक्षणों से युक्त **'प्राण'-शक्ति** विविध इन्द्रियों के माध्यमों के द्वारा **'सु'** अथवा **'कु'** कृत्यों में नियोजित होती है। अतएव इन कृत्यों का परिहार भी इन्हीं **चक्रों की शुद्धि, नाड़ी शुद्धि** द्वारा ही सम्भव है, न कि मार-पीट, गोली-काण्ड, कारागार, अर्थ-दण्ड या फाँसी आदि विषम कर्मों द्वारा। इसी प्रकार सुकर्म की दिशा में पुरस्कार, प्रशंसा, पद-वृद्धि, सम्मान आदि द्वारा कोई गहन या स्थायी उन्नतिकारक क्रिया निष्पन्न नहीं हो पाती।

मुख्यतः गन्ध-स्पर्शादि पञ्च विषयों के प्रति **आसक्ति** ही, जो **प्राण-शक्ति** की दुर्बलता से होती है, पाप-कर्मों का कारण है। **प्राण-शक्ति** का **खुला-भरपूर प्रवाह** जब **विवेक** द्वारा नियन्त्रित होता है, तब **विषयों के प्रति आसक्ति का विलयन** होकर जीव सत्कर्म में प्रवृत्त होता है।

उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही सभी आध्यात्मिक साधनाओं में **'प्राण' की साधना** पर विशेष बल दिया गया है, जिससे संवर्धित एवं परिष्कृत **'प्राण'-शक्ति** की सहायता से साधक वास्तविक प्रगति कर सके। ऐसे अनेक आध्यात्मिक साधनों में से **'स्वर-योग'** साधकों में विशेष रूप से लोक-प्रिय रहा है।

'श्रीपीताम्बरा-पीठ', दतिया (म०प्र०) से प्रकाशित **'स्वरोदय-विज्ञान'** में इस साधना पर उपयोगी प्रकाश डाला गया

है। प्रस्तुत पुस्तक में **श्री अतुल टण्डन** द्वारा इस विषय में व्यापक अध्ययन एवं निजी अनुभवों के आधार पर लिखित शोधात्मक प्रबन्ध प्रकाशित किया गया है। साथ ही, **'चण्डी'**-पत्रिका के वर्ष २१-२२-२३ के अङ्कों में, जो अब अप्राप्य हैं, धारावाहिक रूप से प्रकाशित **'परमहंस पत्रावली'** के आधार पर **स्वर-परिवर्तन-विज्ञान** द्वारा स्वास्थ्य आदि की प्राप्ति का रोचक विवरण भी संलग्न किया गया है। इस सबसे **'प्राण'**-सम्बन्धी साधना के सम्बन्ध में पाठकों को पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो सकेगा, ऐसी आशा है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अन्य साधनाओं के समान इस साधना में भी **अनुभवी गुरु** की सहायता से ही प्रवृत्त होना चाहिए। पुस्तकों से **सैद्धान्तिक ज्ञान** प्राप्त कर, **क्रियात्मक साधना** में जानकार साधक के मार्ग-दर्शन में **अभ्यास** करने से वाञ्छित सफलता मिलती है अन्यथा लाभ के बदले हानि हो सकती है। हाँ, कुछ सामान्य क्रियाओं को करके इस विज्ञान की उपयोगिता को सुधी बन्धु सहज ही हृदयङ्गम अवश्य कर सकते हैं। ऐसी क्रियाओं के सम्बन्ध में यथा स्थान सङ्केत भी किया गया है।

अन्त में **'परमहंस पत्रावली'** के लेखक **ब्रह्मीभूत स्वामी शाश्वतानन्द सरस्वती** के प्रति हम अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं, जिनके विषय-विवेचन से यह प्रकाशन वास्तव में अनूठा बन गया है। हमें विश्वास है कि पाठक बन्धु इस प्रकाशन से पर्याप्त उद्‌बोधन प्राप्त करेंगे। इसी में हमारे प्रयास की सार्थकता निहित है।

'चण्डी'-धाम, अलोपी-देवी मार्ग
प्रयाग-राज (उ०प्र०)

विनीत
कुल-भूषण

ॐ

ज्ञान - खण्ड

'स्वर'-परिचय एवं पञ्च-तत्त्व

१. स्वर-विज्ञान

भारतीय ऋषि-मुनियों ने लोक-कल्याणार्थ जिन-जिन चमत्कार-पूर्ण शास्त्रों का निर्माण किया है, उनमें **'स्वर-शास्त्र'** प्रमुख है। यह विश्व को भारत की एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण देन है। यह विद्या प्रत्येक व्यक्ति के लिए नित्य उपयोगी है। इसके द्वारा **सुख-सौभाग्य, उन्नति** व **सफलता** तथा **स्वास्थ्य** और **दीर्घायु** की प्राप्ति होती है। अतएव इसका ज्ञान अत्यन्त लाभ-दायक है।

स्वर+उदय = **स्वरोदय**। स्वर के नियम-पूर्वक चलाने की विद्या को **'स्वरोदय' (स्वर-विज्ञान)** कहते हैं। यह अत्यन्त **प्राचीन और प्रतिष्ठित विज्ञान** है। वर्तमान समय में यह विद्या लुप्त-प्राय ही है, परन्तु जो लोग इससे जरा भी परिचित हैं, वे इस पर अत्यन्त श्रद्धा रखते हैं क्योंकि इस विद्या का जानकार सदैव **सुखी** एवं **स्वस्थ** रहता है और **जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता** प्राप्त करता है। इस विद्या का अभ्यासी **भूत, वर्तमान और भविष्य की बातें** भी जान सकता है। **'काल-ज्ञान'** की यह एक अत्यन्त सरल रीति है। इसमें बिना किन्हीं अन्य साधनों के मात्र नासिका पर अँगुली रखकर **स्वर की गति से भावी शुभाशुभ का ज्ञान** प्राप्त हो जाता है। **शरीर की आरोग्यता** में भी यह बहुत उपयोगी है। **'स्वर-विज्ञान'** के द्वारा योगियों ने अनेक चमत्कारों से मानव-समाज को चमत्कृत किया और धर्म से विमुख प्राणियों को धर्म में दृढ़ किया लेकिन आज मानव अपने प्रमाद-वश इस ज्ञान से वञ्चित रहकर अन्धे के समान विचरण कर रहा है। **'स्वरोदय'** का स्पष्ट अर्थ है— **'नासिका द्वारा निकलनेवाले पवन (वायु) की गति-विधियों का बोध।'** इस शरीर में वायु कब, कैसे और किस प्रकार प्रवेश करती है

तथा निकलती है एवं उसका क्या प्रभाव है— यही ज्ञान **'स्वर-विज्ञान'** है।

स्वरों के अभ्यास से मनुष्य अपनी छिपी हुई **अलौकिक शक्तियों का समुचित विकास** कर प्रकृति से सामञ्जस्य स्थापित कर सकता है। वस्तुतः इस जगत् में वही पूर्ण-रूपेण सफल हो सकता है, जो **प्रकृति के अनुकूल** चलता है तथा उससे सही सन्तुलन बनाए रखता है क्योंकि प्रकृति से विपरीत चलने पर सफलता सन्दिग्ध हो जाती है। **'स्वर-विज्ञान'** मानव को **प्रकृति से जोड़ने का एक सरल-सहज मार्ग** है।

साधक स्थिर-चित्त से एकान्त में बैठकर शुभ भाव-पूर्वक **गुरु व इष्ट का स्मरण** करके नासिका से निकलता हुआ **स्वर** देखे तथा इस विद्या में वर्णित विधि के अनुसार कार्य करे, तो **स्वर की अनुकूलता** का उसे लाभ मिलेगा। यह विद्या परम पवित्र तथा सर्व-विधि कल्याण करनेवाली है। इससे यह लोक और पर-लोक दोनों सुधरते हैं।

* * *

२. स्वर-माहात्म्य

शास्त्रों में **'स्वर-विद्या'** के ज्ञान के महत्व एवं उसके प्रभाव का वर्णन करते हुए यहाँ तक कहा गया है कि **स्वरों की अनुकूलता** से **राम, रावण**-जैसे महा-बल-शाली का बध करने में समर्थ हुए तथा **स्वरों की प्रतिकूलता** के कारण **रावण**-जैसे अपराजेय महा-पराक्रमी का पतन हुआ। **स्वरों के बल** से **पाण्डव** मात्र पाँच होने पर भी विजयी हुए व **स्वरों के विपरीत** होने से **कौरव** सौ होने पर भी मारे गए।

'स्वर-शास्त्र' की प्रशंसा करते हुए **भगवान् शिव** ने स्वयं कहा है—

गुह्याद् गुह्य - तरं सारमुपकार-प्रकाशनम्।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं, ज्ञानानां मस्तके मणिः॥

गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त ऐसे सार (ज्ञान) एवं लाभ (उपकार) को प्रकाशित करनेवाला यह **स्वरोदय-ज्ञान** सब ज्ञानों का शिरोमणि है।

सूक्ष्मात् सूक्ष्म-तरं ज्ञानं, सुबोधं सत्य-प्रत्ययम्।
आश्चर्यं नास्तिके लोके, आधारं त्वास्तिके जने।।

स्वरों का ज्ञान यद्यपि सूक्ष्म से सूक्ष्म है, फिर भी यह जानने में सुलभ और सत्य का ज्ञान करानेवाला है। यह नास्तिकों के लिए आश्चर्य की वस्तु है और आस्तिकों को सहायता देनेवाला है।

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि, स्वरे गान्धर्वमुत्तमम्।
स्वरे च सर्वं त्रैलोक्यं, स्वरमात्म-स्वरूपकम्।।

स्वर में ही सम्पूर्ण **वेद** हैं। इसी में **शास्त्र** भी अन्तर्भूत हैं। इसी प्रकार **सङ्गीत-विद्या** भी इसी में विद्यमान है। इतना ही नही, सम्पूर्ण त्रैलोक्य भी इसी **स्वर** में है और **स्वर** आत्म-स्वरूप ही है।

नाड़ी-भेदं तथा प्राण - तत्त्व-भेदं तथैव च।
सुषुम्णा-मिश्र-भेदं च, यो जानाति स मुक्तिगः।।

(**स्वर-विज्ञान** के अन्तर्गत) नाड़ियों के भेद, प्राण-तत्त्वों के भेद तथा पिङ्गला, इड़ा, सुषुम्णा आदि नाड़ियों का मिश्र-भेद जो जानता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है।

ब्रह्माण्ड-चण्ड-पिण्डाद्या, स्वरेणैव हि निर्मिताः।
सृष्टि-संहार-कर्त्ता च, स्वरः साक्षान्महेश्वरः।।

स्वर के द्वारा ही ब्रह्माण्ड एवं इसके अंश और पिण्ड (देह) उत्पन्न हुए हैं। इतना ही नहीं, संसार की सृष्टि और संहार करनेवाला **स्वर** साक्षात् **शिव-रूप** ही है।

स्वर-ज्ञानात् परं गुह्यं, स्वर-ज्ञानात् परं धनम्।
स्वर-ज्ञानात् परं ज्ञानं, न वा दृष्टं न वा श्रुतम्।।

स्वर-ज्ञान से श्रेष्ठ कोई गुप्त वस्तु, **स्वर-ज्ञान** से कोई श्रेष्ठ धन और **स्वर-ज्ञान** से उत्तम कोई अन्य ज्ञान न देखा गया है, न ही सुना गया है।

शत्रुं हन्यात् स्वर-बले, तथा मित्र-समागमः।
लक्ष्मी-प्राप्तिः स्वर-बले, कीर्तिः स्वर-बले सुखम्।।

स्वर के बल से ही शत्रुओं का नाश होता है तथा **स्वर** के बल से ही मित्र, धन-सम्पत्ति, यश-कीर्ति व सुख की प्राप्ति होती है।

कन्या-प्राप्तिः स्वर-बले, स्वरतो राज-दर्शनम्।
स्वरेण देवता-सिद्धिः, स्वरेण क्षितिपो वशः।।

स्वर के बल से कन्या की प्राप्ति (विवाह) तथा राजा के दर्शन का संयोग बनता है। **स्वर** के ही प्रभाव से देवता प्रसन्न होते हैं तथा राजा वश में होता है।

सर्व-शास्त्र-पुराणादि, स्मृति - वेदाङ्ग - पूर्वकम्।
स्वर-ज्ञानात् परं तत्त्वं, नास्ति किंचिद् वरानने।।

हे पार्वति ! सम्पूर्ण शास्त्र और पुराणादि, स्मृति और वेदाङ्ग आदि— ये सब **स्वर-ज्ञान** से परे तत्त्व नहीं हैं।

इदं स्वरोदयं शास्त्रं, सर्व-शास्त्रोत्तमोत्तमम्।
आत्म-घट-प्रकाशार्थं, प्रदीप-कलिकोपमम्।।

स्वरोदय-शास्त्र सम्पूर्ण उत्तम शास्त्रों में उत्तम है और आत्म-रूपी घट के प्रकाशनार्थ दीपक की कलिका के समान है।

न तिथिर्न च नक्षत्रं, न वारो ग्रह-देवताः।
न च विष्टि-व्यतीपातो, वैधृत्याद्यास्तथैव च।।

स्वरोदय में तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता, भद्रा, व्यतीपात, वैधृति आदि का दोष नहीं है।

कु-योगो नास्त्यतो देवि! भविता वा कदाचन।
प्राप्ते स्वर-बले शुद्धे, सर्वमेव शुभं फलम्।।

इस (**स्वर-शास्त्र**) में कोई कु-योग नहीं है और न कभी होगा। जब **स्वर का शुद्ध बल** प्राप्त हो, तब सम्पूर्ण फल शुभ ही होता है।

स्वर-विज्ञान के प्रवर्तक **भगवान् शिव** हैं और उन्होंने इसका रहस्य सबसे पहले **भगवती पार्वती** को बतलाया—

शृणु त्वं कथितं देवि!, देहस्थं ज्ञानमुत्तमम्।
येन विज्ञान - मात्रेण, सर्वज्ञत्वं प्रजायते।।

हे देवि! तुम शरीर में रहनेवाले उस उत्तम ज्ञान को सुनो। इसे अब मैं कहता हूँ। **स्वर-विज्ञान** के ज्ञान मात्र से ही मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।

भगवती की अनुकम्पा से यह महान् ज्ञान इस विश्व में प्रकाशित हुआ और सिद्ध योगियों को प्राप्त हुआ तथा गुरु-शिष्य-परम्परा से इसका प्रसार हुआ।

* * *

३. स्वर-ज्ञान के बिना ज्योतिष-ज्ञान अधूरा

स्वर-शास्त्र का ज्ञान प्रत्येक ज्योतिषी एवं भविष्य-वक्ता के लिए अत्यावश्यक है, क्योंकि इसके बिना वह अपने क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता। यथा—

स्वर-हीनश्च दैवज्ञो, नाथ-हीनं यथा गृहम्।
शास्त्र-हीनं यथा वक्त्रं, शिरो-हीनं च यद्-वपुः॥

स्वर-ज्ञान के बिना ज्योतिषी (दैवज्ञ) उसी प्रकार से अपूर्ण है, जिस प्रकार स्वामी के बिना गृह, शास्त्र के बिना मुख और सिर के बिना शरीर अपूर्ण होता है।

ज्योतिषी का ज्योतिष **स्वरोदय-ज्ञान** के बिना लँगड़ा है। **स्वर-ज्ञानी** नाक पर हाथ रख कर नाक के नथुनों में से निकलते हुए श्वास को परख कर समस्त प्रश्नों का सच्चा उत्तर देकर सबका समाधान करने में समर्थ हो जाता है। लाभालाभ, तेजी-मन्दी, वृष्टि-अनावृष्टि, संयोग-वियोग, मित्रता-शत्रुता, वाद-विवाद में जय-पराजय, वर्ष-फल, गर्भ में पुत्र-पुत्री, रोगी का जीवन-मरण, परदेश-गमन (यात्रा) में सफलता-असफलता, कार्य की सिद्धि-असिद्धि आदि नाना प्रकार के प्रश्नों (गुत्थियों) के समाधान में **स्वरोदय-ज्ञान** एक चमत्कारी विद्या है।

वास्तव में **स्वर-शास्त्र** ज्योतिषियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि इससे उनके फलादेश में पूर्णता और सूक्ष्मता आएगी। उनके द्वारा किया गया फल-कथन बिल्कुल ठीक बैठेगा। **स्वर-ज्ञान** की सहायता से वे प्रश्न-कर्त्ता द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त सरलता व शीघ्रता से सही-सही देने में समर्थ हो सकेंगे, लेकिन स्वरों के माध्यम से भविष्य-वाणी करने से पूर्व **स्वर-विद्या** का पूर्ण ज्ञान एवं नित्य अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा

स्वरों की व्याख्या तथा उनसे उत्तर निकालने की प्रक्रिया में गलती हो जाएगी। अतः किसी **स्वर-ज्ञानी** के मार्ग-दर्शन में अभ्यास करने के बाद ही इस क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए।

शास्त्रों का इस सन्दर्भ में कहना है कि जिस प्रकार जल के बिना प्यास को बुझाने में अन्य साधन नहीं है; जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर शव हो जाता है; जिस प्रकार पत्तों के बिना वृक्ष शोभा नहीं पाता तथा देव-मूर्ति के बिना मन्दिर; जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि में सर्वत्र अँधेरा ही अँधेरा रहता है; जिस प्रकार तपस्या के बिना मुनि सुशोभित नहीं होता वैसे ही **'स्वरोदय-ज्ञान' के बिना ज्योतिषी** की किंचित् मात्र भी शोभा नहीं होती क्योंकि **'स्वरोदय-ज्ञान'** को सिद्ध किए बिना ज्योतिषी वास्तविक तथा पूर्ण भेद को नहीं जान सकता। अतः प्रत्येक गणितज्ञ ज्योतिषी को **स्वरोदय-ज्ञान** को किसी जानकार (सुयोग्य गुरु) के पास रह कर सीखना चाहिए।

* * *

४. स्वर-परिचय

विश्व में प्राणि-मात्र के लिए **प्राण-वायु** के अतिरिक्त जीवन धारण करने का अन्य कोई दूसरा साधन नहीं है। जब तक शरीर में **प्राण-वायु** सन्तुलित रहती है, तब तक जीवन अबाध गति से चलता रहता है। इसके असन्तुलित होते ही मनुष्य विपत्ति-ग्रस्त हो जाता है और उसका शरीर व्याधि-मन्दिर बन जाता है।

प्राण-वायु मनुष्य के शरीर में श्वास लेने पर नासिका के माध्यम से प्रवेश करती है। नासिका में दो छिद्र होते हैं, जो बीच में एक पतली हड्डी के कारण एक दूसरे से अलग रहते हैं। मनुष्य कभी दाहिने छिद्र से श्वास लेता है और कभी बाँएँ छिद्र से। दाहिने छिद्र से श्वास लेते समय **'दाहिना स्वर'** तथा बाँएँ छिद्र से श्वास लेते समय **'बाँयाँ स्वर'** चलता हैं। अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति जिस नासिका-छिद्र से प्रतीत हो, उस समय वही **स्वर** चलता समझे। यदि दोनों नासिका-छिद्रों से समान रूप से निःश्वास

होता हो, तो उसे **'मध्य स्वर'** कहते हैं। यह स्वर प्रायः उस समय चलता है, जब **स्वर-परिवर्त्तन** होने को होता है।

वस्तुतः नासिका के भीतर से जो श्वास निकलती है, उसी का नाम **'स्वर'** है। अतः सबसे पहले साधक को यह विचार करना चाहिए कि उसका कौन-सा **'स्वर'** चल रहा है?

जब **दाहिना स्वर** चलता हो, तो **सूर्य का उदय** जानना चाहिए। इसीलिए दाहिने स्वर को **'सूर्य स्वर'** भी कहते हैं।

बाँएँ स्वर के समय **चन्द्र का उदय** होता है। अतः इसे **'चन्द्र स्वर'** भी कहा जाता है।

स्वर का सम्बन्ध **नाड़ियों** से है। यद्यपि शरीर में ७२,००० नाड़ियाँ हैं तथापि इनमें से **२४ नाड़ियाँ** प्रधान हैं और इन चौबीस नाड़ियों में से **१० नाड़ियाँ** अति प्रधान हैं एवं उन दस नाड़ियों में से भी **३ नाड़ियाँ** अतिशय प्रधान मानी गई हैं, जिनके नाम **इड़ा, पिङ्गला** और **सुषम्णा** हैं।

शरीर में मेरु-दण्ड के दक्षिण (दाहिनी) दिशा की तरफ **पिङ्गला** (सूर्य) नाड़ी है तथा वाम (बाईं) तरफ **इड़ा** (चन्द्र) नाड़ी है। इन दोनों नाड़ियों के मध्य में **सुषुम्णा** नाड़ी है। **सुषुम्णा** नाड़ी के प्रकाश से दोनों नथुनों से **स्वर** (श्वास) चलता है।

अब हम जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ स्वरों के विस्तृत व सूक्ष्म परिचय हेतु **'स्वर-सारिणी'** प्रस्तुत कर रहे हैं। इस सारिणी से स्वरों के सन्दर्भ में समग्र जानकारी प्राप्त होगी तथा ज्योतिषी-बन्धु इससे निश्चय ही लाभान्वित होंगे।

स्वर-सारिणी

	दाहिना-स्वर	बायाँ स्वर	मध्य स्वर
ग्रह	सूर्य	चन्द्र	राहु
नाड़ी	पिंगला	इड़ा	सुषुम्णा
प्रकृति	उग्र	सौम्य	मिश्रित
धातु	पित्त	कफ	वायु

	दाहिना-स्वर	बायाँ स्वर	मध्य स्वर
लिङ्ग	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
देवता	शिव	शक्ति	अर्द्ध-नारीश्वर
वर्ण	कृष्ण	गौर	मिश्रित या धूम्र
काल	दिवस	रात्रि	सन्ध्या
प्रबल तत्त्व	अग्नि, वायु	जल, पृथ्वी	आकाश
संज्ञा	चर	स्थिर	द्वि-स्वभाव
वार	रवि, मङ्गल, शनि	सोम, बुध, गुरु, शुक्र	बुध (अन्य मत से गुरु)
पक्ष	कृष्ण	शुक्ल	★
तिथि	कृष्णपक्ष— १,२,३,७,८, ९,१३,१४,३० शुक्लपक्ष— ४,५,६,१०, ११,१२	शुक्लपक्ष— १,२,३,७,८, ९,१३,१४,१५ कृष्णपक्ष— ४,५,६,१०, ११,१२	★
मास	वैशाख, श्रावण, कार्तिक, माघ	ज्येष्ठ, भाद्रपद, मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन	आषाढ़, आश्विन पौष, चैत्र
संक्रान्ति	मेष, मिथुन, सिंह तुला, धनु, कुम्भ	वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन	★
राशि	१,४,७,१०	२,५,८,११	३,६,९,१२
संख्या	विषम	सम	शून्य
स्थिति	नीचे, पीछे, दाहिने	ऊपर, बाएँ, सामने	★

	दाहिना-स्वर	बायाँ स्वर	मध्य स्वर
नक्षत्र	अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, उत्तराषाढ़, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, पूर्वाभाद्रपद रोहिणी	आश्लेषा, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, मूल, पूर्वाषाढ़, ज्येष्ठा	मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य
दिशा	पूर्व, उत्तर	पश्चिम, दक्षिण	कोण

जब एक स्वर को बदल कर दूसरा स्वर आ रहा हो, तो उस समय **स्वर-संक्रान्ति** होती है। जितने समय दोनों स्वर चलें, वह समय **विषुवत्-काल** कहलाता है।

* * *

५. स्वरों की अवस्था

जब श्वास बाहर निकल रही हो, तो स्वर की **निर्गुण अवस्था** होती है और स्वर को **निर्गुण स्वर** कहा जाता है। जब श्वास नासिका के भीतर जा रही हो, उस समय स्वर की **सगुण अवस्था** होती है तथा स्वर को **सगुण स्वर** कहते हैं। जो स्वर चल रहा हो, उसे **उदित स्वर** कहा जाता है और बन्द स्वर को **अस्त स्वर** कहते हैं। इन्हें क्रमशः **पूर्ण स्वर** और **रिक्त स्वर** भी कहा जाता है।

स्वर सगुण और **उदित** हो, तो कार्य सिद्ध हो। इससे विपरीत हो, तो कार्य की हानि होती है।

* * *

६. दाहिने स्वर के कार्य

अब हम प्रत्येक **स्वर के अन्तर्गत किए जाने योग्य कार्यों का वर्णन** कर रहे हैं, जिससे आप अपने कार्यों में **स्वर की अनुकूलता**

का लाभ उठा सकें क्योंकि जिस **स्वर** में जैसे गुण होते हैं, उसके चलते समय उसके अनुरूप कार्यों को करने में सफलता मिलती है, विपरीत होने पर कार्य निष्फल हो जाते हैं।

१- क्रूर कर्म, चर कार्य, उग्र कर्म।
२- अस्त्र-शस्त्र-अभ्यास।
३- शास्त्राभ्यास।
४- स्त्री के साथ संसर्ग (सम्भोग)।
५- यन्त्र-तन्त्र-निर्माण।
६- राज-पुरुष-दर्शन।
७- युद्ध (वाद-विवाद या मुकदमा-न्यायालय)।
८- स्नान व शौच।
९- भोजन-शयन।
१०- व्यायाम, कुश्ती लड़ना।
११- औषधि-सेवन, औषधि देना।
१२- वाहन पर चढ़ना।
१३- पर्वतारोहण।
१४- नौकारोहण।
१५- तैराकी।
१६- मद्य-पान।
१७- द्यूत-क्रीड़ा।
१८- शिकार।
१९- उग्र मन्त्र-साधना।
२०- कठोर हठ-योग-साधना।
२१- भूत-प्रेत-यक्षिणी-साधना।
२२- वशीकरण, मारण-उच्चाटन।
२३- भूत-पिशाच, डाकिनी-शाकिनी अभिचार-कर्म, दृष्टि-दोष आदि का निवारण।
२४- मशीन-सम्बन्धी (यान्त्रिक) कार्य।

२५- क्रय।

२६ विक्रय।

२७- नया बही-खाता लिखना-लिखवाना।

२८- व्यापार-वृद्धि।

२९- पत्र-लेखन।

३०- ईंट-पत्थर, लकड़ी और रत्न आदि का काटना-छाँटना

३१- निकट यात्रा।

३२- शत्रु के घर जाना।

३३- नौकरी।

उपर्युक्त कार्यों को **दाहिने स्वर (सूर्य-स्वर, पिङ्गला नाड़ी)** के चलते समय करना श्रेयस्कर रहता है क्योंकि उस समय साधक को **स्वर की अनुकूलता** से उत्पन्न **स्वर-बल** की प्रबल शक्ति इन **कार्यों की सिद्धि** दिलाती है। अतः हमारा पाठकों को यह परामर्श है कि वे **दाहिने स्वर से सम्बन्धित कार्यों को दाहिने स्वर के चलते समय** ही करें। इससे उन्हें आश्चर्य-जनक रूप से सफलता मिलेगी।

दाहिने स्वर से सम्बन्धित महत्त्व-पूर्ण कार्यों को यदि कृष्ण-पक्ष में रवि, मङ्गल या शनिवार को दाहिने स्वर (सूर्य-स्वर, पिङ्गला नाड़ी) **के उदय के समय** किया जाए, तो सफलता निश्चित होती है।

अब आइए, इसी तरह **बाँएँ स्वर** में किए जाने योग्य कार्यों पर भी विचार किया जाए—

* * *

७. बाँएँ स्वर के कार्य

१- सौम्य कर्म, स्थिर कार्य, शान्ति-कर्म।

२- किसी से मित्रता करना।

३- देव-दर्शन।

४- देव-प्रतिष्ठा।

५- मन्दिर-निर्माण।

६- धर्मानुष्ठान।

७- पौष्टिक कार्य।
८- विवाह।
९- गृह-प्रवेश।
१०- मकान की नींव रखना।
११- जलाशय, कुआँ, बाग-वाटिका-निर्माण।
१२- व्यापार-उद्योग-स्थापना।
१३- ग्राम-नगर बसाना।
१४- बीज-वपन आदि कृषि-कर्म।
१५- रसायन-कर्म।
१६- दूर-गमन।
१७- प्रेम-निवेदन।
१८- प्रार्थना।
१९- बन्धु-मिलन।
२०- राज-तिलक।
२१- पद-ग्रहण।
२२- अन्न-धन-संग्रह।
२३- नूतन वस्त्र-आभूषण-धारण।
२४- औषधि-निर्माण।
२५- नृत्य-गायन।
२६- तीर्थ-यात्रा।
२७- सौम्य मन्त्र-जप।
२८- दीक्षा, दान-दक्षिणा।
२९- नौकरी के लिए स्वामी से मिलना।
३०- शीत-पेय-सेवन।
३१- कष्ट, शोक, मूर्छा आदि का निवारण।
३२- लघु शङ्का।

उक्त कार्यों को बाँएँ स्वर (चन्द्र-स्वर, इड़ा नाड़ी) के चलते समय करना ही ठीक है। जो व्यक्ति इसके अनुसार कार्य करेगा, उसका

अभीष्ट अवश्य पूर्ण होगा। वस्तुतः **बाँएँ स्वर** से सम्बन्धित कार्यों को **बाँएँ स्वर** के समय करना ही शुभ है, अन्यथा अशुभ फल की प्राप्त होगी। उदाहरण के लिए किसी घर की नींव रखते समय यदि उसके स्वामी का **बाँयाँ स्वर** चले, तो उस मकान की स्थिति बहुत काल तक रहेगी। **बाँएँ स्वर** में गृह-प्रवेश करने से सदा आनन्द-मङ्गल रहेगा। विवाह के समय यदि वर-वधू दोनों का **बाँयाँ स्वर** चले, तो गठ-बन्धन स्थायी तथा दाम्पत्य-जीवन सदा मधुर रहेगा। किसी से मैत्री या सम्बन्ध किया जाए, तो वह स्थिर रहेगा। पद-ग्रहण करते समय यदि **बाँयाँ स्वर** चले, तो नौकरी में आगे स्थिति सदा अनुकूल रहे। यदि कोई राजनेता **बाँएँ स्वर** के समय शपथ (मन्त्रि-मण्डल में पद) ग्रहण करे, तो उसका कार्य-काल काफी समय तक चले। किसी उद्योग (मिल-फैक्टरी) की स्थापना करते समय उसके मालिक का यदि **बाँयाँ स्वर** चले, तो वह वर्षों चले। यदि किसान अपने **बाँएँ स्वर** के चलते समय बीज बोए, तो फसल बहुत अच्छी हो। किसी मन्दिर के निर्माण के शुभारम्भ व उसमें देव-प्रतिष्ठा के समय कर्त्ता का यदि **बाँयाँ स्वर** चले, तो बहुत ही शुभ हो, इत्यादि। **विपरीत स्वर** के चलते समय यदि उक्त कार्यों को किया जाए, तो परिणाम अशुभ होगा।

इसलिए **मुहूर्त्त-बल के साथ स्वर-बल** का भी ध्यान रखना चाहिए, तभी कार्य में पूर्ण सफलता व शुभ परिणाम की प्राप्ति होगी।

बाँएँ स्वर में वर्णित महत्व-पूर्ण कार्यों को यदि **शुक्ल-पक्ष** में **सोम, गुरु** या **शुक्रवार** को किया जाए, तो सफलता अवश्यम्भावी होती है।

* * *

८. मध्य स्वर

मध्य स्वर के चलते समय कोई सांसारिक कार्य नहीं करना चाहिए। इस **स्वर** के चलते समय यदि किसी कार्य को किया जाए, तो वह कभी ठीक नहीं होगा और उसमें हानि होगी क्योंकि

'सुषुम्णा' नाड़ी विष-रूपिणी है, इसमें काल का वास है, अतः सर्व-कार्यों का नाश करनेवाली है। इसलिए इस **स्वर** में कोई महत्व-पूर्ण कार्य नहीं करना चाहिए।

मध्य स्वर के चलते समय यदि कोई व्यक्ति यात्रा के लिए प्रस्थान करे, तो यात्रा में हानि या मृत्यु की पूर्ण सम्भावना होगी। यदि किसी कन्या का विवाह हो, तो वह शीघ्र ही विधवा हो जाए। घर की नींव डाली जाए, तो वह विनाश का कारण बन जाए। यदि गृह-प्रवेश किया जाए, तो उसका निर्माण (बनना) ही मुश्किल हो जाए। यदि सम्भोग किया जाए, तो गर्भ में नपुंसक का जन्म हो। कोई नयी वस्तु खरीदी जाए, तो वह नष्ट हो जाए। किसी से मैत्री की जाए, तो वह शत्रुता में परिणत हो जाए। यदि औषधि ली जाए, तो वह निष्फल हो जाए, इत्यादि।

मध्य स्वर में योगाभ्यास, प्रभु का ध्यान, आत्म-तत्त्व-विचार तथा **प्राणायाम** आदि करना चाहिए। इस समय **ध्यान** बहुत जल्दी लगता है। इस समय का किया हुआ **योग-साधन** बहुत अधिक प्रभाव रखता है। इसका मुख्य कारण यह है कि **सुषुम्णा नाड़ी** के चलते समय शरीर की सभी नाड़ियाँ और सब चक्र कुछ विकसित हो जाते हैं। इस समय किसी को शाप या वरदान देने से वह अवश्य घटित होता है।

* * *

६. स्वर का प्रवाह

प्रायः **एक स्वर ढाई घटी (१ घण्टा)** चलता है, फिर दूसरा स्वर चलता है। यह **स्वाभाविक (प्राकृतिक)** प्रवाह है। लेकिन यदि **स्वर के समय में परिवर्तन** अर्थात् कम-ज्यादा हो, तो उसी के अनुसार शुभाशुभ फल होता है।

बाँयाँ स्वर (चन्द्र-स्वर) यदि ४ घटी (१ घण्टा ३६ मिनट) तक चले, तो किसी **उत्तम वस्तु की प्राप्ति** हो। लगातार ८ घटी (३ घण्टे १२ मिनट) चले, तो **सुख-शान्ति** मिले। १४ घटी (५ घण्टा ३६ मिनट) तक चले, तो **प्रेम-मैत्री आदि की प्राप्ति** हो। एक दिन, एक

रात लगातार चले (२४ घण्टे), तो **ऐश्वर्य-वैभव व मान-सम्मान** मिले। यदि दो दिन तक आधा-आधा प्रहर **दोनों स्वर** चलें, तो **यश, यात्रा और सौभाग्य की प्राप्ति** हो। यदि दिन को **बाँयाँ** तथा रात्रि में **दाहिना स्वर** चले, तो **दीर्घायु** हो। यदि लगातार १० घटी (४ घण्टे) तक **बाँयाँ स्वर** चलता रहे, तो **देह-कष्ट;** १२ घटी (४ घण्टे ४८ मिनट) तक चले, तो **उद्वेग;** तीन दिन लगातार चले, तो **रोग;** ५ दिन लगातार चले, तो **अत्यन्त चिन्ता वा व्याकुलता** तथा एक मास तक लगातार चले, तो **धन-हानि** होती है।

यदि लगातार ४ घटी तक **दाहिने स्वर (सूर्य-स्वर)** का प्रवाह हो, तो किसी **प्रिय वस्तु की हानि** हो अथवा बिगाड़ हो। १२ घटी तक लगातार चले, तो **प्रिय-जन से वैर-विरोध।** २० घटी तक चले, तो **आयुष्य-क्षय** और यदि बीमार हो, तो रोगी को **मरण-तुल्य कष्ट अथवा मृत्यु** हो।

यदि एक स्वर के स्थान पर दूसरा स्वर चले अर्थात् **विपरीत स्वर का उदय** हो, तो प्रथम ३ घण्टों में **चिन्ता,** उसके आगे के तीन घण्टों (६ घण्टे) तक चले, तो **इष्ट-द्रव्य का नाश,** १५ घण्टे तक चले, तो **पद-च्युति;** १८ घण्टे तक ऐसा हो, तो **कार्य का नाश (असफलता);** २१ घण्टे तक **विपरीत स्वरों का प्रवाह** हो, तो **रोग एवं दुःख** तथा २४ घण्टे तक यदि एक स्वर के स्थान पर दूसरा स्वर चले, तो **मरण-तुल्य कष्ट की प्राप्ति** होती है।

इसलिए **स्वरों के प्रवाह पर ध्यान रखना चाहिए तथा इनमें असन्तुलन (विपरीत क्रम) होने पर विपरीत स्वर को बदल कर उसके स्थान पर निर्धारित स्वर को चलाना चाहिए।** इससे स्वरों के व्यतिक्रम से उत्पन्न अशुभ फल दूर होंगे तथा सुख-शान्ति की प्राप्ति होगी।

कुछ आचार्यों के अनुसार **वारों के अनुसार स्वरों का अनुकूल प्रवाह-क्रम** इस प्रकार है—

(वार)	(दिन)	(रात)
रविवार	**दाहिना**	**बाँयाँ**
सोमवार	**बाँयाँ**	**दाहिना**
मङ्गलवार	**दाहिना**	**बाँयाँ**

(वार)	(दिन)	(रात)
बुधवार	**बाँयाँ**	**दाहिना**
गुरुवार	**बाँयाँ**	**दाहिना**
शुक्रवार	**बाँयाँ**	**दाहिना**
शनिवार	**दाहिना**	**बाँयाँ**

उक्त सारिणी सर्व-मान्य नहीं है, विद्वानों में मत-भेद है।

* * *

१०. स्वरोदय-काल

स्वरों का परिचय, उनके **गुण-उपयोग** आदि का ज्ञान ऊपर दिया गया है, परन्तु यह भी जानना अत्यन्त आवश्यक है कि **स्वरों का उदय** कब होता है? अर्थात् कौन-सा स्वर कब उदित होता है?

शुक्ल-पक्ष की १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५ (पूर्णिमा) तिथियों को प्रातःकाल सूर्योदय के समय **बाँएँ स्वर** का तथा ४, ५, ६, १०, ११, १२ तिथियों को **दाहिने स्वर** का उदय होता है।

कृष्ण-पक्ष की १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, ३० (अमावास्या) तिथियों को प्रातःकाल सूर्योदय के समय **दाहिने स्वर** का तथा ४, ५, ६, १०, ११, १२ तिथियों को **बाँएँ स्वर** का उदय होता है।

शुक्ल-पक्ष का स्वामी **चन्द्र** है। इस पक्ष में **चन्द्र-बल** प्रबल होता है क्योंकि चन्द्र नित्य वृद्धि करके पूर्णता को प्राप्त होता है। इसीलिए शुक्ल-पक्ष के प्रारम्भ, मध्य व अन्त में **चन्द्र-स्वर (बाँएँ स्वर)** की तीन-तीन दिनों की तीन आवृत्तियाँ होती हैं और **सूर्य-स्वर** की तीन-तीन दिनों की दो आवृत्तियाँ इनके मध्य में होती हैं। इस प्रकार **चन्द्र-स्वर** शुक्ल-पक्ष में १५ दिनों में कुल ९ दिन, जब कि **सूर्य-स्वर** मात्र ६ दिन स्वामी माना गया है। इससे **चन्द्र-बल** व **सूर्य-बल** में ३:२ का अनुपात स्पष्ट होता है और **शुक्ल-पक्ष में चन्द्र-बल** को प्रधानता होने से **चन्द्र** का इस पक्ष पर स्वामित्व सिद्ध हो जाता है। यथा—

(शुक्ल-पक्ष)	(स्वर)	(कृष्ण-पक्ष)	(स्वर)
प्रतिपदा	चन्द्र-स्वर	प्रतिपदा	सूर्य-स्वर
द्वितीया	चन्द्र-स्वर	द्वितीया	सूर्य-स्वर
तृतीया	चन्द्र-स्वर	तृतीया	सूर्य-स्वर
चतुर्थी	सूर्य-स्वर	चतुर्थी	चन्द्र-स्वर
पञ्चमी	सूर्य-स्वर	पञ्चमी	चन्द्र-स्वर
षष्ठी	सूर्य-स्वर	षष्ठी	चन्द्र-स्वर
सप्तमी	चन्द्र-स्वर	सप्तमी	सूर्य-स्वर
अष्टमी	चन्द्र-स्वर	अष्टमी	सूर्य-स्वर
नवमी	चन्द्र-स्वर	नवमी	सूर्य-स्वर
दशमी	सूर्य-स्वर	दशमी	चन्द्र-स्वर
एकादशी	सूर्य-स्वर	एकादशी	चन्द्र-स्वर
द्वादशी	सूर्य-स्वर	द्वादशी	चन्द्र-स्वर
त्रयोदशी	चन्द्र-स्वर	त्रयोदशी	सूर्य-स्वर
चतुर्दशी	चन्द्र-स्वर	चतुर्दशी	सूर्य-स्वर
पूर्णिमा	चन्द्र-स्वर	अमावास्या	सूर्य-स्वर

इसी प्रकार **कृष्ण-पक्ष का स्वामी सूर्य** है। इस पक्ष में चन्द्रमा घटता है, अतः उसका बल कम होता है। इससे **सूर्य-बल** बढ़ता है। इस पक्ष में प्रारम्भ, मध्य व अन्त में **सूर्य-स्वर (दाहिने स्वर)** की तीन-तीन दिनों की तीन आवृत्तियाँ तथा इनके मध्य **चन्द्र-स्वर (बाँएँ स्वर)** की तीन-तीन दिनों की मात्र दो आवृत्तियाँ होती हैं। इस प्रकार कृष्ण-पक्ष में १५ दिनों में ९ दिन **सूर्य-स्वर** तथा मात्र ६ दिन **चन्द्र-स्वर** के लिए निर्धारित हैं। इससे **सूर्य-बल** व **चन्द्र-बल** में ३ : २ का अनुपात एवं **कृष्ण-पक्ष में सूर्य-बल की प्रधानता** होने से सूर्य का इस पक्ष पर स्वामित्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

स्वरों का यह **स्वाभाविक (प्राकृतिक) क्रम** है। **स्वरोदय-परीक्षा सूर्योदय के समय** इसलिए की जाती है क्योंकि दिन का प्रारम्भ भारतीय ज्योतिष के अनुसार **सूर्योदय** से होता है। इसलिए

सूर्योदय-कालीन तिथि (उदया तिथि) के अनुसार ही **स्वरोदय** का विचार करना चाहिए।

स्वर-साधना के इच्छुक साधकों को **स्वरोदय-काल का ज्ञान** होना परमावश्यक है।

* * *

११. शुभाशुभ फल

जब निर्धारित तिथियों में **निर्धारित स्वर का उदय** प्रातः-काल सूर्योदय के समय नहीं होता, तब मनुष्य का प्रकृति से सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा उसको **विघ्न-बाधा, विपत्ति व हानि** का सामना करना पड़ता है। **निर्धारित स्वर** चलने पर **शुभ व अनुकूल फल** प्राप्त होते हैं।

पहले दिन **विपरीत स्वर** का उदय हो, तो उस दिन चित्त उद्विग्न रहता है, दूसरे दिन धन की हानि तथा तीसरे दिन परदेश-गमन कराता है। यदि चार दिनों तक **विपरीत स्वर** का उदय हो, तो इष्ट-प्रयोजन का नाश तथा पद से भ्रष्ट होना और पाँच दिन तक निरन्तर **विपरीत स्वर** का उदय होने पर भयङ्कर सङ्घर्ष और अति दुःखादि फल प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अगले पाँच-पाँच दिन तक का फल विपरीत अर्थात् अशुभ जानें। यदि एक पक्ष (१५ दिन) तक निरन्तर **विपरीत स्वर** का उदय हो, तो भयङ्कर व्याधि उत्पन्न हो। दो पक्षों (एक मास) तक **विपरीत स्वर** का उदय हो, तो स्वयं पर विशेष विपदा अथवा किसी प्रियजन की मृत्यु हो और यदि तीन पक्ष (४५ दिन) तक लगातार ऐसा हो, तो उस मनुष्य की छः मास में मृत्यु या उसे मरण-तुल्य कष्ट हो।

यदि **शुक्ल-पक्ष में प्रतिपदा** (१) को **बाँएँ स्वर** का उदय न होकर, प्रातःकाल सूर्योदय के समय **दाहिने स्वर** का उदय हो, तो उस पक्ष में पूर्णिमा तक **रोग, हानि, क्लेश, दुःख आदि अशुभ फल** प्राप्त होते हैं। लेकिन, **बाँएँ स्वर** का उदय हो, तो वह पूरा **शुक्ल-पक्ष शुभ-फल-दायक** होगा।

कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा (१) को प्रातःकाल सूर्योदय के समय

यदि **दाहिने स्वर** के स्थान पर **बाँएँ स्वर** का उदय हो, तो उस पक्ष में अमावास्या तक पूर्वोक्त अशुभ प्राप्त होंगे। लेकिन, यदि **दाहिने स्वर** का उदय हो, तो यह पूरा **कृष्ण-पक्ष शुभ-फल-दाता** होगा।

यदि दोनों पक्षों में प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय **मध्य स्वर** चले, तो उस मास **हानि और लाभ समान रूप से** हों और वह मास शुभाशुभ (शुभ + अशुभ) **मिश्र - फल - कारक** होगा।

* * *

१२. स्वर-परिवर्तन

जब **स्वर विपरीत** चल रहा हो, तब उसको बदलने की आवश्यकता होती है। कभी-कभी कार्य-भेद से अथवा अन्य नाना प्रकार के कारणों से **स्वर को बदलने का विशेष प्रयोजन** होता है। **कार्य के अनुकूल स्वर** चलने पर कार्य प्रारम्भ करूँगा, इस आशा से **अनुकूल स्वर** की प्रतीक्षा में बैठे रहना किसी के लिए सम्भव नहीं है। आज के इस व्यस्त युग में इतना समय भला किसे है? अतः अपनी इच्छा व आवश्यकता के अनुसार **स्वर को बदलने की विधि का ज्ञान** होना भी साधक के लिए बहुत ही आवश्यक है। **स्वर-परिवर्तन की क्रियाएँ** बहुत ही सहज हैं, इनके द्वारा थोड़े से प्रयास से ही **स्वर** को बदला जा सकता है यथा—

(१) जिस नासिका-छिद्र से श्वास चलती हो, उसके दूसरे नथुने को हाथ के अँगूठे से दबाकर पकड़ें और जिस नथुने से स्वर चल रहा हो, उसी नथुने से वायु का आकर्षण करें (खींचे)। फिर उसी नथुने को हाथ की अँगुलियों से दबा कर पकड़ें और दूसरे नथुने से वायु निकालें। बार-बार कुछ देर तक ऐसा ही करने से **स्वर** अवश्य ही बदल जाता है।

(२) जो **स्वर** चलाना हो, उसके विपरीत करवट बदल कर लेट जाएँ। थोड़ी देर में **स्वर** बदल जाएगा। उदाहरण के लिए यदि **दाहिना स्वर** चल रहा है और **बाँयाँ स्वर** चलाना हो, तो दाहिनी

करवट लेट जाएँ। इसी प्रकार जब **दाहिना स्वर** लाने की आवश्यकता हो, तो **बाईं करवट** लेट जाएँ।

(३) दाहिने पैर पर जोर देकर (एक पैर से) खड़े हो जाइए, तो थोड़ी देर में **बाँयाँ स्वर** चलने लगेगा। इसी प्रकार बाँएँ पैर पर खड़े होने से **दाहिना स्वर** आ जाएगा।

(४) लेट कर तीसरी पसली के पास तकिया दबा दें। इससे बहुत शीघ्र स्वर बदल जाता है।

(५) पुरानी रुई की गोली बनाकर उस नासिका-छिद्र में लगा दें, जिससे स्वर चल रहा हो और जिसे बन्द करके दूसरा चलाना हो। थोड़ी देर में दूसरे छिद्र से स्वतः ही **स्वर का प्रवाह** होने लग जाएगा।

(६) एकाएक दौड़ने से या परिश्रम अथवा कसरत करने से भी स्वर बदल जाता है।

(७) **'ध्यान'** के द्वारा भी **स्वर-परिवर्तन** किया जा सकता है।

उपर्युक्त विधियों में से किसी के भी द्वारा स्वर बदला जा सकता है। जिन लोगों का अभ्यास नहीं है, उनको प्रारम्भ में स्वर बदलने में कुछ परेशानी होगी। इसके लिए प्रतिदिन **'नेती क्रिया'** को किया जाए तथा नाक को साफ रखा जाए, तो स्वर बदलने में कोई विशेष असुविधा न होगी तथा **स्वर-परिवर्तन** सहज हो जाएगा।

विपरीत स्वर को बन्द करके **अनुकूल स्वर** को चलाने से अनिष्ट की सम्भावना समाप्त हो जाती है और साधक सकुशल-सानन्द रहता है।

हमारा यह अनुभव है कि जब ग्रहों के कारण किसी अशुभ-अप्रिय घटना के घटने का योग होता है, तब **विपरीत स्वर का प्रवाह** होने लगता है। आकाश में स्थित ये ग्रह तो हमारे हाथों में नहीं हैं, जो हमारे निर्देशानुसार चलें। लेकिन स्वरों पर नियन्त्रण रखकर इन्हें अनुकूल रूप से चलाया जा सकता है। यदि विपरीत ग्रह-दशा में अथवा **प्रतिकूल ग्रह-गोचर में स्वरों के प्रवाह** को सन्तुलित रखकर ठीक से चलाया जाए, तो ग्रह-जन्य अरिष्ट में

काफी कमी आ जाती है। यद्यपि हमने यह भी देखा है कि जब ग्रह-योग विपरीत होता है, तब स्वर भी विपरीत रूप से चलता है तथा कई बार बहुत प्रयास करने पर भी **अनुकूल स्वर** का प्रवाह नहीं हो पाता है। लेकिन जो लोग इस विद्या के नित्य अभ्यासी हैं, उन्हें प्रयत्न करने पर **स्वर-परिवर्तन** में सफलता मिल जाती है और भावी दुर्घटना की तीव्रता व अशुभ फल में बहुत कमी हो जाती है। जिन व्यक्तियों को **स्वर का बदलना** सम्भव न हो, वे मात्र यही करें कि **विपरीत स्वर वाले नासिका-छिद्र** को रुई लगाकर बन्द कर दें।

* * *

१३. तत्त्व-ज्ञान

एक-मात्र **देव-देव महेश्वर** निराकार तथा निरञ्जन हैं। उन्हीं से **आकाश** उत्पन्न हुआ है। इसके बाद उस आकाश से **वायु,** वायु से **तेज (अग्नि),** तेज से **जल** और जल से **पृथ्वी** की उत्पत्ति हुई है। ये पाँच महा-भूत ही **'पञ्च-तत्त्व'** के नाम से जाने जाते हैं। उक्त **'पञ्च-तत्त्व'** से ही ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है और उसी में विलय को प्राप्त होता है। यथा (ब्रह्म-ज्ञान तन्त्र) —

पञ्च-तत्त्वाद् भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं विलीयते।
पञ्च-तत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम्॥

'पञ्च-तत्त्व' से ही ब्रह्माण्ड-मण्डल की सृष्टि हुई है एवं इसमें ही वह लय (नाश) को प्राप्त होगा। **'पञ्च-तत्त्व'** के आगे जो **परम तत्त्व** है, उसी को **तत्त्वातीत निरञ्जन** कहते हैं।

'यद् ब्रह्माण्डे तत्-पिण्डे' के अनुसार जिन तत्त्वों से ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ है, उन्हीं तत्त्वों से ब्रह्माण्ड-गत सभी पिण्डों का सृजन हुआ है। शास्त्रों के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड **पञ्च-तत्त्वों** से बना है। **पृथ्वी** से अस्थि, मांस, नाखून, त्वचा और रोम— इन पाँच की उत्पत्ति हुई है। **जल** से शुक्र (वीर्य), रक्त, मज्जा, मल, मूत्र— ये पाँच; **वायु** से धारण करना, चलना, फेंकना, सिकोड़ना और फैलाना— ये पाँच; **अग्नि** से निद्रा, भूख, प्यास, क्लान्ति

(थकावट) और आलस्य (सुस्ती)— ये पाँच एवं **आकाश** से काम, क्रोध, लोभ, मोह और लज्जा उत्पन्न हुए हैं।

आकाश का गुण— शब्द, **वायु का गुण**— स्पर्श (छूना), **अग्नि का गुण**— रूप, **जल का गुण**— रस एवं **पृथ्वी का गुण**— गन्ध है। इसमें भी आकाश में सिर्फ **शब्द** एक ही गुण-विशिष्ट है, वायु में **शब्द** और **स्पर्श**— ये दोनों गुण विशिष्ट हैं, अग्नि में **शब्द, स्पर्श** और **रूप**— ये तीन गुण विशिष्ट हैं, जल में— **शब्द, स्पर्श, रूप** और **रस**— ये चार गुण विशिष्ट हैं एवं पृथ्वी— **शब्द, स्पर्श, रूप, रस** और **गन्ध**— इन पञ्च-गुणों से संयुक्त है। आकाश का गुण **कान** से, वायु का गुण **त्वचा** से, अग्नि का गुण **आँख** से, जल का गुण **जिह्वा** (जीभ) से एवं पृथ्वी का गुण **नाक** से ज्ञात होता है।

पञ्च-तत्त्व-मये देहे, पञ्च-तत्त्वानि सुन्दरि!
सूक्ष्म-रूपेण वर्त्तन्ते, ज्ञायन्ते तत्त्व-योगिभिः।।

पञ्च-तत्त्व-मय देह में **पञ्च-तत्त्व** सूक्ष्म-रूप में विराजित हैं। तत्त्व-वित् (तत्त्व समझनेवाले) योगि-गण उनके सम्बन्ध में समस्त बात जानते हैं।

गुह्य-देश में **मूलाधार-चक्र— पृथ्वी-तत्त्व का स्थान** है, लिङ्ग-मूल में **स्वाधिष्ठान-चक्र— जल-तत्त्व का स्थान** है, नाभि-मूल में **मणिपूरक (मणिपुर)-चक्र— अग्नि-तत्त्व का स्थान** है, हृदय-स्थल (छाती) में **अनाहत-चक्र— वायु-तत्त्व का स्थान** है एवं कण्ठ-देश में **विशुद्ध-चक्र— आकाश-तत्त्व का स्थान** है।

स्वर भी **पञ्च-तत्त्वों** से निर्मित हैं। इसलिए **स्वर-साधक** को स्वरों में इन **तत्त्वों की स्थिति का ज्ञान** होना आवश्यक है, क्योंकि इसको जाने बिना **स्वर-विद्या** से पूरा लाभ नहीं मिल सकता।

* * *

१४. तत्त्वोदय

एक **स्वर** स्वाभाविक रूप से लगभग ढाई घटी अर्थात् एक घण्टे तक चलता है। इस अवधि में ५० पल अर्थात् २० मिनट तक

पृथ्वी-तत्त्व, ४० पल अर्थात् १६ मिनट तक **जल-तत्त्व,** ३० पल अर्थात् १२ मिनट तक **अग्नि-तत्त्व,** २० पल अर्थात् ८ मिनट तक **वायु-तत्त्व,** १० पल अर्थात् ४ मिनट तक **आकाश-तत्त्व** रहता है।

(तत्त्व)	(उदय-काल)
पृथ्वी	**५० पल अर्थात् २० मिनट**
जल	**४० पल अर्थात् १६ मिनट**
अग्नि	**३० पल अर्थात् १२ मिनट**
वायु	**२० पल अर्थात् ८ मिनट**
आकाश	**१० पल अर्थात् ४ मिनट**

रविवार को प्रातःकाल सूर्योदय के समय स्वर में **पृथ्वी-तत्त्व,** सोमवार को **जल-तत्त्व,** मङ्गलवार को **अग्नि-तत्त्व,** बुधवार को **पृथ्वी-तत्त्व,** बृहस्पतिवार को **वायु-तत्त्व,** शुक्रवार को **अग्नि-तत्त्व** और शनिवार को **आकाश-तत्त्व** का उदय स्वाभाविक रूप से होता है।

स्वर में पहले **वायु-तत्त्व,** उसके बाद **अग्नि-तत्त्व,** तदनन्तर **पृथ्वी-तत्त्व** फिर **जल-तत्त्व** और अन्त में **आकाश-तत्त्व** आता है।

(स्वर में तत्त्वों का क्रम)

वायु	**प्रथम**
अग्नि	**द्वितीय**
पृथ्वी	**तृतीय**
जल	**चतुर्थ**
आकाश	**पञ्चम**

कुछ विद्वानों का कहना है कि स्वर में **आकाश-तत्त्व** को क्रम में नहीं रखा जा सकता। इसका उदय **सुषुम्णा नाड़ी** में होता है, जब **स्वर-परिवर्तन** होने को होता है।

जिस प्रकार ज्योतिष-शास्त्र में ग्रह की महा-दशा में अन्तर्दशा का विवरण मिलता है, उसी प्रकार **स्वर-शास्त्र** में किसी तत्त्व के उदय-काल में **पाँचों तत्त्व** आते हैं। उदाहरण के लिए **वायु-तत्त्व** को लीजिए—

प्रथम — **वायु में वायु।**
द्वितीय — **वायु में अग्नि।**
तृतीय — **वायु में पृथ्वी।**
चतुर्थ — **वायु में जल।**
पञ्चम — **वायु में आकाश।**

इसी प्रकार अन्य तत्त्वों के विषय में जानें। यह अत्यन्त सूक्ष्म विषय है और सर्व-साधारण के लिए विशेष महत्व का नहीं है। यहाँ हमने प्रसङ्ग-वश इसका उल्लेख कर दिया। जिज्ञासु इस सन्दर्भ में पूरी जानकारी गुरु-मुख से पाएँ।

* * *

१५. तत्त्व-ज्ञान की रीति

अब यह प्रश्न उठता है कि जब कोई **स्वर** चल रहा हो, तो यह कैसे जाना जाए कि किस समय कौन-सा **तत्त्व** चल रहा है?

तत्त्व की पहचान निम्न विधियों द्वारा की जा सकती है—

(१) नासिका से प्रश्वास निकलते समय यह देखना चाहिए कि उसकी लम्बाई क्या है? अर्थात् साधक नासिका के पास हाथ लगाकर देखे कि प्रश्वास (नाक से निकली हवा) का नीचे कहाँ तक अनुभव हो रहा है, फिर उसी के अनुसार **तत्त्व का निर्णय** करना चाहिए। यदि नासिका के अन्दर ही श्वास रहे, तो **आकाश-तत्त्व,** ४ अंगुल बाहर आए, तो **अग्नि-तत्व,** ८ अंगुल बाहर आए, तो **वायु-तत्त्व,** १२ अंगुल बाहर आए, तो **पृथ्वी-तत्त्व** और १६ अंगुल बाहर आए, तो **जल-तत्त्व** समझना चाहिए।

आकाश-तत्त्व	**नासिका के भीतर ही श्वास रहता है**
अग्नि-तत्त्व	**४ अंगुल**
वायु-तत्त्व	**८ अंगुल**
पृथ्वी-तत्त्व	**१२ अंगुल**
जल-तत्त्व	**१६ अंगुल**

(२) यदि नासिका-छिद्र के मध्य श्वास चले, तो **पृथ्वी-तत्त्व।**

नीचे के भाग से होकर चले, तो **जल-तत्त्व**। ऊपर के भाग से चले, तो **अग्नि-तत्त्व**। किनारे (बगल) से चले, तो **वायु-तत्त्व** और यदि घूम कर नथुने के अन्दर सब जगह छूते हुए चले, तो स्वर में **आकाश-तत्त्व** का उदय समझना चाहिए।

(३) दोनों हाथों के दोनों अँगूठों से दोनों कानों के छिद्र, दोनों तर्जनियों से दोनों आँखें, दोनों मध्यमाओं से दोनों नासिका-छिद्र तथा दोनों अनामिकाओं और कनिष्ठिकाओं से मुख बन्द करने पर, यदि पीला रङ्ग दिखे, तो **पृथ्वी-तत्त्व,** श्वेत रङ्ग से **जल-तत्त्व,** लाल रङ्ग से **अग्नि-तत्त्व,** नीले रङ्ग से **वायु-तत्त्व** तथा रङ्ग-बिरङ्ग (बहु-रङ्ग) से **आकाश-तत्त्व** की स्थिति समझें।

पृथ्वी-तत्त्व	**स्वर्णिम-पीला**
जल-तत्त्व	**सफेद (श्वेत)**
अग्नि-तत्त्व	**लाल**
वायु-तत्त्व	**नीला**
आकाश-तत्त्व	**बहु-रंगी**

इस क्रिया को **षण्मुखी-मुद्रा** कहते हैं। यह स्वराभ्यासी साधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसके द्वारा **पञ्च-तत्त्वों की साधना** की जाती है, अतः इसका आगे हम **'तत्त्व-साधन'** के अन्तर्गत विस्तार से वर्णन करेंगे।

(४) एक दर्पण को साफ करके उस पर जोर से श्वास छोड़ें, ताकि वह निःश्वास की भाप से धुँधला हो जाए; फिर देखें कि इस धुँधलेपन का क्या स्वरूप है। इससे **तत्त्व का निर्णय** किया जा सकता है।

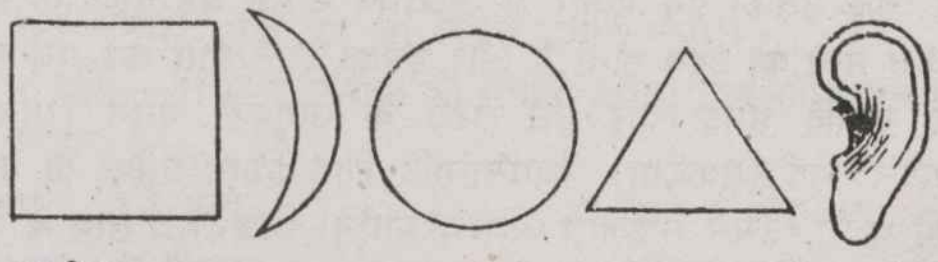

पृथ्वी-तत्त्व **जल-तत्त्व** **वायु-तत्त्व** **अग्नि-तत्त्व** **आकाश-तत्त्व**

यदि चारों कोने बराबर हैं, तो **पृथ्वी-तत्त्व**। अर्द्ध-चन्द्राकार है, तो **जल-तत्त्व**। गोलाकार है, तो **वायु-तत्व** और त्रिकोणाकार है, तो

अग्नि-तत्व समझें। **आकाश-तत्त्व** में कोई निश्चित आकृति नहीं दिखाई देती; इसमें प्रायः अनेक बिन्दुओं से मिश्रित या कर्णाकार (कान की तरह) आकृति दृष्टि-गोचर होती है

(५) **तत्त्व पहचानने की एक सरल विधि** यह भी है कि पाँच गोलियाँ **पाँच तत्त्वों** के रङ्गों (१. पीली, २. सफेद, ३. लाल, ४. नीला और ५. बहुरङ्गी) की बना लें और इन्हें अपनी जेब में रक्खें। जब कभी यह जानने कि इच्छा हो कि कौन-सा **तत्त्व** चल रहा है, तो आँखें बन्द करके और मन को एकाग्र करके जेब में से एक गोली निकाल लें। बहुधा उसी रङ्ग की गोली निकलेगी, जिस रङ्ग का **तत्त्व** उस समय चल रहा होगा।

(६) **तत्त्व की परीक्षा** इस प्रकार भी की जा सकती है कि किसी मित्र या दूसरे व्यक्ति से कहें कि वह किसी रङ्ग का अपने मन में विचार कर ले। अब यह देखें कि अपना कौन-सा **तत्त्व** चल रहा है? जो **तत्त्व** चल रहा होगा, उसका ही रङ्ग उस व्यक्ति ने अपने मन में लिया होगा। पहले पहल इसमें गलती हो सकती है, पर नियमित रूप से अभ्यास करने पर एकदम सही बताना सम्भव हो जाएगा।

(७) यदि मुँह में मीठा स्वाद अनुभव हो, तो **पृथ्वी-तत्त्व,** कषाय (कसैले) स्वाद से **जल-तत्त्व** का, तिक्त (तीखे) स्वाद से **अग्नि-तत्त्व** का, अम्ल (खट्टे) स्वाद से **वायु-तत्त्व** का एवं कटु (कड़वे) स्वाद से **आकाश-तत्त्व** का उदय हुआ समझना चाहिए।

मानव की देह में जब जिस प्रकार से नासिका से श्वास चलती है, तब उसका इस प्रकार से अध्ययन करके यह देखें कि कब किस **तत्त्व का उदय** होता है और इसका ज्ञान प्राप्त कर एवं **तत्त्व के गुणादि** समझ कर उस तत्त्व के अनुकूल गमन (यात्रा), वाद-विवाद (मुकदमा), व्यवसायादि जिस किसी प्रकार के कार्य को करेंगे, उसमें सफलता अवश्य पाएँगे। भिन्न-भिन्न **तत्त्व के क्या गुण हैं? तत्त्वों के उदय** में किस प्रकार का कार्य करना चाहिए, अब हम इस विषय पर विचार करेंगे।

* * *

१६. तत्त्वों के गुण

१ ग्रह— यदि **दाहिना स्वर** चल रहा हो, तो **अग्नि-तत्त्व में मङ्गल, पृथ्वी-तत्त्व में सूर्य, जल-तत्त्व में शनि** और **वायु-तत्त्व में राहु** की स्थिति समझना चाहिए।

यदि **बाँयाँ स्वर** चलता हो, तो **जल-तत्त्व में चन्द्र, पृथ्वी-तत्त्व में बुध, वायु-तत्त्व में बृहस्पति** और **अग्नि-तत्त्व में शुक्र** की स्थिति समझें। **आकाश-तत्त्व सर्व-ग्रह-मय** है।

(दाहिना स्वर)	(बाँयाँ स्वर)
अग्नि-तत्त्व : मङ्गल	**जल-तत्त्व : चन्द्र**
पृथ्वी-तत्त्व : सूर्य	**पृथ्वी-तत्त्व : बुध**
जल-तत्त्व : शनि	**वायु-तत्त्व : वृहस्पति**
वायु-तत्त्व : राहु	**अग्नि-तत्त्व : शुक्र**

आकाश-तत्त्व : सर्व-ग्रह

एक अन्य मतानुसार **तत्त्वों व ग्रहों का सम्बन्ध** इस प्रकार है—

१ सूर्य : अग्नि-तत्त्व	**६ शुक्र : जल-तत्त्व**
२ चन्द्र : जल-तत्त्व	**७ शनि : वायु-तत्त्व**
३ मङ्गल : अग्नि-तत्त्व	**८ राहु : वायु-तत्त्व**
४ बुध : पृथ्वी-तत्त्व	**९ केतु : वायु-तत्त्व**
५ वृहस्पति : आकाश-तत्त्व	

ज्योतिषियों को **तत्त्वों के स्वामी— ग्रहों** का इस प्रकार विचार करके फल-कथन करना चाहिए। जिस समय जो **तत्त्व** चल रहा हो, उस समय उसके **ग्रह का विशेष प्रभाव** समझें।

२ राशि— तत्त्वों में **राशियों की स्थिति** अथवा **तत्त्व-राशि-सम्बन्ध** इस प्रकार है—

१ मेष : अग्नि-तत्त्व	**७ तुला : वायु-तत्त्व**
२ वृषभ : पृथ्वी-तत्त्व	**८ वृश्चिक : जल-तत्त्व**
३ मिथुन : वायु-तत्त्व	**९ धनु : अग्नि-तत्त्व**
४ कर्क : जल-तत्त्व	**१० मकर : पृथ्वी-तत्त्व**

५ सिंह : **अग्नि-तत्त्व** ११ कुम्भ : **वायु-तत्त्व**

६ कन्या : **पृथ्वी-तत्त्व** १२ मीन : **जल-तत्त्व**

आकाश-तत्त्व का किसी राशि-विशेष से सम्बन्ध नहीं है।

३ **नक्षत्र**— तत्त्वों में नक्षत्रों की स्थिति इस प्रकार है—

पृथ्वी-तत्त्व : **धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित** और **उत्तराषाढ़ा।**

जल-तत्त्व : **पूर्वाषाढ़, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तरा-भाद्रपद** और **शतभिषा।**

अग्नि-तत्त्व : **भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी, स्वाती** और **पूर्वा-भाद्रपद।**

वायु-तत्त्व : **विशाखा, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी** और **मृगशिरा।**

आकाश-तत्त्व अखिल-ब्रह्माण्ड-मय है, अतः इसमें किसी नक्षत्र-विशेष की स्थिति नहीं है।

ज्योतिषी-बन्धु **ग्रहों, राशियों एवं नक्षत्रों की स्थिति** इस प्रकार जानकर इनके अनुसार **गणना** व **फलादेश** कर सकते हैं।

४ **दिशा**— **पृथ्वी-तत्त्व** की पूर्व में, **जल-तत्त्व** की पश्चिम में, **अग्नि-तत्त्व** की दक्षिण में और **वायु-तत्त्व** की उत्तर दिशा में स्थिति है। **आकाश-तत्त्व** दिशाओं के मध्य कोणों में है।

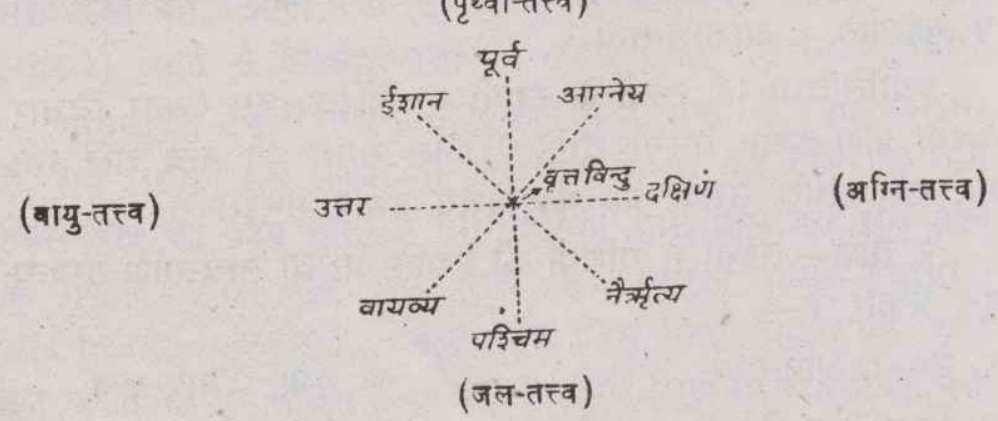

इस प्रकार तत्त्वों और दिशाओं का सम्बन्ध जानकर यात्रा, खोई हुई वस्तु एवं घर से भागे हुए व्यक्ति और चोर के घर की दिशा व चोरी गए सामान की स्थिति आदि का आकलन किया जा सकता है।

५ **स्थान**— मनुष्य के शरीर में दोनों कन्धों में **अग्नि-तत्त्व,** नाभि के मूल में **वायु-तत्त्व,** घुटनों में **पृथ्वी-तत्त्व, जल-तत्त्व** पाँवों के अन्तिम भाग में और **आकाश-तत्त्व** सिर में रहता है।

६ **गुण**— **पृथ्वी** और **जल-तत्त्व** सतो-गुणी, **वायु-तत्त्व** रजो-गुणी, **अग्नि-तत्त्व** तमो-गुणी तथा **आकाश-तत्त्व** स्थिर है।

पृथ्वी-तत्त्व और **जल-तत्त्व** शुभ होते हैं और **अग्नि-तत्त्व** में **मिश्र-फल** (शुभ+अशुभ) होता है। **आकाश** और **वायु-तत्त्व** में **हानि व मृत्यु** आदि अशुभ फल होते हैं।

७ **द्वार**— **पृथ्वी-तत्त्व** का द्वार गुदा है, **जल-तत्त्व** का द्वार लिङ्ग है, **अग्नि-तत्त्व** का द्वार नेत्र है, **वायु-तत्त्व** का द्वार नासिका है तथा **आकाश-तत्त्व** का द्वार कान है।

८ **मन**— इन पाँचों तत्त्वों का मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जब जिस समय जिस **तत्त्व का उदय** होता है, उस समय उस **तत्त्व के गुण-धर्मानुसार** ही मनःस्थिति होती है। यथा—

जब **पृथ्वी-तत्त्व** का उदय होता है, तब मन में धैर्य, शान्ति, सन्तोष व संयम का अनुभव होता है। बड़ी-से-बड़ी परेशानी में भी मन विचलित नहीं होता और धीरज बना रहता है।

जल-तत्त्व के उदय के समय मन में आनन्द, शीतल-सौम्य भाव का उदय होता है। दया, धर्म, उपकार इसकी देन है। मन में कल्याणकारी विचार आते हैं।

अग्नि-तत्त्व के अवधि-काल में मन में क्रोध, सन्ताप, अशान्ति व अहङ्कार का उदय होता है। इस तत्त्व के प्रभाव में मानसिक स्थिति उग्र रहती है; जरा-सी बात पर लड़ाई-झगड़ा हो सकता है।

वायु-तत्त्व के उदय-काल में मन में खलबली, उद्वेग, अशान्ति, उच्चाटन व अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न होती है। मन किसी बात पर स्थिर या एकाग्र नहीं हो पाता है। क्या करूँ! क्या न करूँ! यही मन में होता है।

आकाश-तत्त्व के समय मन को इष्ट-ध्यान, तत्त्व-चिन्तन, साधना-उपासना में लगाना चाहिए। इस समय मन बड़ी जल्दी

एकाग्र होकर ध्यानस्थ हो जाता है। ध्यान-योग के लिए यह सर्वाधिक अनुकूल व उपयुक्त मनःस्थिति है।

६ **कार्य**— **पृथ्वी-तत्त्व** में स्थिर कार्य, **जल-तत्त्व** में शुभ कार्य, **अग्नि-तत्त्व** में उग्र कार्य, **वायु-तत्त्व** में चर कार्य करने पर निश्चित रूप से सफलता प्राप्त होती है। **आकाश-तत्त्व** में ध्यान, ईश्वर-भजन तथा योगाभ्यास के अतिरिक्त और कोई काम नहीं करना चाहिए।

पृथ्वी-तत्त्व में कार्य की सिद्धि धीरे-धीरे होती है, **जल-तत्त्व** में कार्य की सिद्धि तत्काल होती है, **वायु-तत्त्व** में कार्य में विघ्न होता है और **अग्नि-तत्त्व** में, तो सिद्ध हुआ कार्य भी नष्ट हो जाता है, **आकाश-तत्त्व** में कोई कार्य सिद्ध नहीं होता।

पृथ्वी-तत्त्व में वे काम करने चाहिए, जो परिश्रम और दृढ़ता चाहते हैं। **जल-तत्त्व** में अल्प समय में होनेवाले गति-युक्त कार्यों को करना चाहिए। **अग्नि-तत्त्व** में तेजस्वी कार्यों को (जिनमें तेज, बल की आवश्यकता हो) करनी चाहिए। **वायु-तत्त्व** में हल्के-फुल्के काम करने चाहिए। **आकाश-तत्त्व** में योग (प्राणायाम, कुण्डलिनी-जागरण आदि) करना चाहिए।

इस सन्दर्भ में अनुसन्धान और अनुभव करने पर हमें जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ है, उसे भी पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ लिख रहे हैं—

पृथ्वी-तत्त्व— इस तत्त्व के उदय के समय जो कार्य किया जाता है, वह **पृथ्वी की तरह स्थिर** रहता है। इस तत्त्व में **विवाह** करने से कभी सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक) नहीं हो सकता। **मकान** की नींव रखने व **गृह-प्रवेश** के लिए यह तत्त्व अत्यन्त योग-कारक है। **अन्न-धन-संग्रह** के लिए इस तत्त्व में स्थिति सर्वाधिक शुभ रहती है। किसी भी कार्य का शुभारम्भ, व्यापार का श्रीगणेश, मिल-कारखाने की स्थापना, उद्घाटन-कर्म इसी तत्त्व में करना उत्तम है।

जल-तत्त्व— यह अति-शीघ्र फल-दायक तत्त्व है। इस तत्त्व के उदय के समय जो भी कार्य किया जाता है, उसका फल (परिणाम) शीघ्र मिलता है। **विद्यारम्भ, शीघ्र-गमन, शीघ्र-लाभ** के लिए यह **जल-तत्त्व** सद्यः फल-दायक है। इस तत्व के चलते समय यात्रा के लिए प्रस्थान करने से **यात्रा** पूर्णतः सफल होती है। किसी

भी शुभ कार्य में इस तत्त्व की स्थिति अत्यन्त अनुकूल रहती है। इसके प्रभाव से कार्य निर्विघ्नता-पूर्वक शान्ति से सम्पन्न होता है। किसी को अपने अनुकूल बनाने के लिए यह तत्त्व अत्यन्त प्रभावी है। इस तत्व के समय यदि किसी क्रुद्ध व्यक्ति के सम्मुख जाया जाए, तो उसका क्रोध तुरन्त शान्त हो जाएगा।

अग्नि-तत्त्व— इस तत्त्व के उदय के समय कभी कोई **शुभ कार्य** प्रारम्भ न करे, अन्यथा वह नष्ट हो जाएगा। **विवाह** करने से सम्बन्ध-विच्छेद, **पद-ग्रहण** करने से पद-च्युति, **व्यापार** प्रारम्भ करने से हानि होती है। यदि किसी **मकान का निर्माणारम्भ** या **कारखाने की स्थापना** इस तत्त्व के चलते समय की जाए, तो अग्नि-काण्ड द्वारा उसे क्षति होने का योग बन जाता है। इस तत्त्व में यदि किसी को **ऋण** दिया जाय, तो वह लौटता नहीं है। **यात्रा** के लिए प्रस्थान करने पर दुर्घटना का भय होता है।

वायु-तत्त्व— इस तत्त्व के उदय के समय यदि किसी कार्य की सिद्धि के लिए कहीं जाया जाए, तो **कार्य-सिद्धि** नहीं होती; केवल मौखिक आश्वासन से बात टल जाती है। जिस तरह वायु वस्तुओं को उड़ा देती है, उसी प्रकार यह तत्त्व **कर्म-फल** को उड़ा देता है। इस तत्त्व के समय यदि किसी को **ऋण** दिया जाय, तो वह पूरा नहीं लौटता है। इस तत्त्व के चलते समय किसी **गम्भीर कार्य** को नहीं करना चाहिए, अन्यथा परिणाम अशुभ (कार्य निष्फल) होता है।

आकाश-तत्त्व— इस तत्त्व के समय कोई **सांसारिक कार्य** नहीं करना चाहिए क्योंकि इस समय **योगाभ्यास, इष्ट-चिन्तन, भजन-कीर्तन** के अलावा जो कोई भी कार्य किया जाएगा, वह निष्फल हो जाएगा अथवा उसमें **विपरीत परिणाम** प्राप्त होगा। **प्राणायाम** व **कुण्डलिनी-जागरण** के लिए यह तत्त्व सर्वाधिक अनुकल है। इस समय **ध्यान** बहुत जल्दी जमता है।

१० बलिष्ठता— अग्नि-तत्त्व और **वायु-तत्व** दाहिने स्वर में तथा **पृथ्वी-तत्व** और **जल-तत्व** बाएँ स्वर में बली होते हैं। **आकाश-तत्त्व** मध्य स्वर में बली होता है।

किसी भी कार्य को करते समय **स्वर** और **तत्त्वों** दोनों का ही विचार करना चाहिए। **स्वर** और **तत्त्व** के मेल से कार्य निःसन्देह

सफल होता है।

११ जातक— १. पृथ्वी-तत्त्व— इस तत्त्व में जन्म लेनेवाला मनुष्य पीलेपन के साथ कुछ श्याम-वर्ण का अथवा गेहुँए रङ्ग का, मोटा तथा हृष्ट-पुष्ट होता है। वह साहसी, धैर्यवान्, गम्भीर, दानी, धर्मात्मा उपकारी, दीर्घजीवी एवं भाग्यवान् होता है।

२. जल-तत्त्व— इस तत्त्व में जन्म लेनेवाला व्यक्ति सौम्य-स्वभाव व शान्त प्रकृति का, गोरे रङ्ग का सुन्दर, मीठी (मधुर) वाणी बोलनेवाला, नम्र-भाषी, दया-धर्म-युक्त, प्रखर कल्पना-शक्तिवाला और सबको प्रसन्न रखनेवाला तथा भाग्यवान् होता है।

३. अग्नि-तत्त्व— इस तत्त्व में जन्मा व्यक्ति उग्र प्रकृति का, शीघ्र क्रोधित होनेवाला, रक्त वर्ण का, कठोर वाणी बोलनेवाला, दूसरों को सतानेवाला, निष्ठुर और अपकारी होता है परन्तु साहसी, मार-काट व लड़ाई में शूर-वीर होता है।

४. वायु-तत्त्व— इस तत्त्व में जन्मा व्यक्ति दुष्ट-चित्त, दंगा-फसाद मचानेवाला, मिथ्या-वादी, विश्वास-घाती, अस्थिर मनो-वृत्तिवाला, कर्कश, चंचल स्वभाव का, अधिक बोलनेवाला, दुबला-पतला तथा लम्बे कद का होता है।

५. आकाश-तत्त्व— इस तत्त्व में मरा हुआ बच्चा पैदा होता है या होते ही शीघ्र मर जाता है। इस तत्त्व में उत्पन्न हुए बालक प्रायः नपुंसक होते हैं।

* * *

१७. तत्त्व-साधना

तत्त्वों को वश में लाने से मनुष्य प्रकृति के गुप्त भेदों को भली-भाँति समझ सकता है और अद्‌भुत शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है।

तत्त्वों को वश में करने का पहला साधन तो यह है कि मनुष्य अपने सब कार्य **स्वर के अनुसार** करे— जिससे **स्वर** उसके अधीन हो जाएँ।

दूसरा साधन यह है कि प्रातःकाल या जिस समय मन सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त हो (प्रातः-काल का समय ही सबसे

अच्छा होता है), उस समय आकाश पर दृष्टि जमाए। कुछ दिनों के पश्चात् रंग-बिरंगी आकृतियाँ इधर-उधर आकाश में फिरती दिखाई देंगी और अभ्यास के बाद जो **तत्त्व** अभ्यासी का चल रहा है, उसी का रङ्ग आकाश में दिखाई देगा। नेत्र बन्द कर लेने से भी वही रङ्ग दिखाई देगा।

तीसरा साधना यह है कि जब इतना अभ्यास हो जाए और **तत्त्वों** को आप भली-भाँति पहचान सकें, तब रात्रि को तीन-चार बजे सोकर उठें। सब प्रकार से निश्चिन्त होकर आसन मारकर बैठ जाएँ और मालूम करें कि इस समय कौन-सा **तत्त्व** चल रहा है। जब यह मालूम हो जाए कि इस समय कौन सा **तत्त्व** चल रहा है, तो निम्न प्रकार साधना करें—

यदि **पृथ्वी-तत्त्व** चलता हो, तो **सोने (स्वर्ण) के समान** चमकदार खूब **पीले रङ्ग की चतुष्कोण आकृति का ध्यान** करे और **'लं'** बीज-मन्त्र का जप करें।

यदि **जल-तत्त्व** चलता हो, तो **उज्ज्वल प्रभा-युक्त** और अति निर्मल **श्वेत अर्द्ध-चन्द्राकार आकृति का ध्यान** करें तथा **'वं'** बीज-मन्त्र का जप करें।

यदि **अग्नि-तत्त्व** चल रहा हो, तो **अरुण-वर्ण (लाल रङ्ग)** की **त्रिकोणाकार आकृति का ध्यान** करें तथा **'रं'** बीज-मन्त्र का जप करें।

यदि **वायु-तत्त्व** का उदय हो, तो **श्याम-वर्ण (साँवले रङ्ग)** की **गोलाकार आकृति का ध्यान** करें तथा **'यं'** बीज-मन्त्र का जप करें।

यदि **आकाश-तत्त्व** है, तो **नाना प्रकार के रङ्ग-वाली (बहुरंगी) निराकार** (अनिश्चित आकारवाली) **आकृति का ध्यान** करें तथा **'हं'** बीज-मन्त्र का जप करें।

पृथ्वी-तत्त्व की साधना से योगाभ्यासी की देह हलकी हो जाती है और कभी-कभी समाधि अवस्था में शरीर पृथ्वी से ऊपर उठ जाता है। शरीर नीरोग हो जाता है।

जल-तत्त्व की साधना से भूख-प्यास जाती रहती है और जल के भीतर रहने की शक्ति प्राप्त होती है।

अग्नि-तत्त्व की साधना से अपरिमित भोजन और घड़ों जल पी लेने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, साथ ही कठिन धूप और आग की लपटों से भी अभ्यासी का शरीर कष्ट का अनुभव नहीं करता।

वायु-तत्त्व की साधना से तीव्र गति से चलने की शक्ति प्राप्त होती है। साधक बड़ी तेजी से चलकर थोड़े से ही समय में बहुत दूर जा सकता है।

आकाश-तत्त्व की साधना से तीनों काल (भूत, वर्तमान और भविष्य) के ज्ञान की शक्ति, साथ ही अणिमादि आठों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

इस प्रकार **तत्त्व-साधना** से बड़ी शक्ति प्राप्त होती है। छः मास तक नित्य नियमित रूप से अभ्यास करने पर **तत्त्व-सिद्धि** की प्रारम्भिक स्थिति पूरी होती है और फिर आगे निरन्तर इसी प्रकार अभ्यास करते रहने से **पूर्ण सिद्धि** भी प्राप्त होती है।

* * *

१८. तत्त्वों का महत्त्व

वस्तुतः **स्वर-ज्ञानी** के लिए **तत्त्व-ज्ञान** केवल लाभ-दायक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है। तत्त्वों के इस विस्तृत रहस्य को जाने बिना **स्वर-साधक** का ज्ञान अधूरा है। किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए **स्वर व तत्त्व का अनुकूल संयोग** होना आवश्यक है। जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं और अब यहाँ पुनः उस तथ्य को दोहरा रहे हैं कि **पृथ्वी-तत्त्व** और **जल-तत्त्व— बाँएँ स्वर** में महा-शुभ तथा कल्याणकारी हैं एवं इस योग में सूर्य-चन्द्रादि नव-ग्रह भी अनिष्ट करने में समर्थ नहीं होते। **'स्थिर' कार्यों** के लिए यह **सर्व-श्रेष्ठ योग** है। इसी प्रकार **दाहिने स्वर** में **वायु** एवं **अग्नि-तत्त्व 'चर' कार्यों** के लिए अच्छे हैं। **स्वरोदय-शास्त्र** में कहा भी गया है—

तत्त्वे रामो जयं प्राप्तः, सु-तत्त्वे च धनञ्जयः।
कौरवा निहताः सर्वे, युद्धे तत्त्व-विपर्ययात्॥

अर्थात् तत्त्वों की प्रबलता के कारण ही रामचन्द्र जी की विजय हुई, इसी प्रकार शुभ तत्त्वों के द्वारा ही अर्जुन ने युद्ध में सफलता प्राप्त की और तत्त्वों के अशुभ रहने के कारण कौरवों की हार हुई और वे मारे गए।

* * *

स्वरोदय और योग

१. शरीर-तत्त्व

योग की शिक्षा प्राप्त करने के पहले अपने शरीर का विषय जान लेना आवश्यक है। **शरीर** और **प्राण**— इन दोनों विषयों का सम्यक् तत्त्व न जानने से **योग-साधना** विडम्बना मात्र होती है, इसलिए योगी बनने के पहले या उसके साथ-साथ इसे जान लेना आवश्यक है क्योंकि **शरीर और प्राण का परस्पर सम्बन्ध** न जानने से कोई भी साधक **प्राण का संयम** नहीं कर सकता और न शरीर को ही **नीरोग** रख सकता है एवं कौन-सी नाड़ी में किस प्रकार **प्राण-वायु** बहती है और कैसे **प्राण का अपान से संयोग** करना होता है, यह भी नहीं जान सकता। अतः **योग-साधन** भी नहीं बनता। शास्त्रोक्ति है कि—

नव-चक्रं षोडशाधारं, त्रि-लक्ष्यं व्योम-पञ्चकम्।
स्व-देहे ये न जानन्ति, कथं सिध्यन्ति योगिनः॥

—उत्पत्ति-तन्त्र

नव-चक्र, षोडशाधार, त्रिलक्ष्य और **पञ्चाकाश** को अपने शरीर में जो व्यक्ति नहीं जानता, उसे **योग-सिद्धि** कैसे होगी? जिस किसी साधन के लिए जो कुछ आवश्यक है, वह सभी शरीर में मौजूद है।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि, तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र, व्यवहारः प्रवर्तते॥

—शिव-संहिता

'भूर्भुवः स्वः' इन तीनों लोकों में जितने प्रकार के जीव हैं, वे सभी शरीर में अवस्थान कर रहे हैं। वे सब पदार्थ मेरु को वेष्टन करके अपना-अपना विषय सम्पादन कर रहे हैं।

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः, सप्त-द्वीप-समन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः, क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः।।
ऋषयो मुनयः सर्वे, नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्य-तीर्थानि पीठानि, वर्तन्ते पीठ-देवताः।।
सृष्टि-संहार-कर्तारौ, भ्रमन्तौ शशि-भास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च, जलं पृथ्वी तथैव च।।

—शिव-संहिता

जीव के शरीर में **सात द्वीपों** के साथ **सुमेरु पर्वत,** सब **नद, नदी, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र** और **क्षेत्रपाल** प्रभृति भी अवस्थान करते हैं। सब **मुनि-ऋषि, ग्रह-नक्षत्र, पुण्य-तीर्थ, पुण्य-पीठ** और **पीठ-देवता-गण** इसी शरीर में नित्य अवस्थान कर रहे हैं। सृष्टि का नाश करनेवाले **चन्द्र-सूर्य** इसी शरीर में सर्वदा भ्रमण करते रहते हैं। **१ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु** और **५ आकाश** प्रभृति **पञ्च-महा-भूत** भी इसी शरीर में अधिष्ठित हैं।

जानाति यः सर्वमिदं, स योगी नात्र संशयः।

—शिव-संहिता

जो व्यक्ति शरीर का सब वृतान्त जानता है, वही **प्रकृत योगी** है। अतएव सबसे पहले **शरीर का तत्त्व** जान लेना आवश्यक है।

प्रत्येक जीव का शरीर— **१ शुक्र, २ शोणित, ३ मज्जा, ४ मेद, ५ मांस, ६ अस्थि** और ७ **त्वक्**— इन सात धातुओं से बना है। **मृत्तिका (पृथ्वी), वायु, अग्नि, जल** और **आकाश**— इन्हीं पञ्च-भूतों से शरीर के बनाने में समर्थ ये **सप्त-धातुएँ** एवं **क्षुधा, तृष्णादि** शरीर के धर्म उत्पन्न हुए हैं। **पञ्च-भूतों** से यह शरीर उत्पन्न होने के कारण यह **भौतिक देह** कहलाता है। **भौतिक देह** निर्जीव एवं जड़ स्वभावापन्न है, किन्तु चैतन्य - रूपी पुरुष के अवस्थान की भूमि होने के कारण यह सचेतन की भाँति दीख पड़ता है। शरीर के भीतर **पञ्च-भूतों** में प्रत्येक के अधिष्ठान के लिए अपने-अपने स्वतन्त्र स्थान नियत हैं, उन्हीं स्थानों को **चक्र** कहते हैं। वे सब अपने-अपने **चक्र** में अवस्थान करते हुए शरीर के सब काम कर रहे हैं। गुह्य देश में **मूलाधार चक्र— पृथ्वी-तत्त्व का स्थान**

है, लिङ्ग-मूल में **स्वाधिष्ठान-चक्र— जल-तत्त्व का स्थान है,** नाभि-मूल में **मणिपूर-चक्र—अग्नि-तत्त्व का स्थान** है, हृदय-देश में **अनाहत-चक्र—वायु-तत्त्व का स्थान** है, और कण्ठ-देश में **विशुद्ध चक्र— आकाश-तत्त्व का स्थान** है। योगि-गण इन्हीं **पाँच चक्रों** में पृथ्वी आदि के क्रम से **पञ्च महा-भूतों का ध्यान** किया करते हैं। इनके सिवा **ध्यान-योग** में और भी कई एक चक्र हैं। ललाट-देश के **आज्ञा-नामक चक्र में पञ्च-तन्मात्र-तत्त्व, इन्द्रिय-तत्त्व, चित्त** और **मन का स्थान** है। उसके ऊपर **ज्ञान नामक चक्र** में **अहं-तत्त्व का स्थान** है। उसके भी ऊपर **ब्रह्म-रन्ध्र** में एक **शत-दल-चक्र** है। उसमें **महत् तत्त्व** का स्थान है। उससे भी ऊपर **महा-शून्य** में **सहस्र-दल-चक्र** में **प्रकृति-पुरुष परमात्मा का स्थान** है। योगि-गण **पृथ्वी-तत्त्व से परमात्मा** तक सब तत्त्वों का इसी भौतिक शरीर में ध्यान किया करते हैं।

* * *

२. नाड़ी-ज्ञान

'नाड़ी' मानसिक मार्ग को कहते हैं। ये नाड़ियाँ भौतिक शरीर में प्रवहमान **प्राण के मार्ग** हैं। इनकी जानकारी आवश्यक है। **स्नायु** तथा **नाड़ियाँ** दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं, हालाँकि कभी-कभी इन दोनों के विषय में बड़ा भ्रम उत्पन्न हो जाता है। **स्नायुओं** का सम्बन्ध **भौतिक शरीर** से तथा **नाड़ियों** का सम्बन्ध **प्राणिक शरीर** और **सूक्ष्म कोषों** से है। **'नाड़ी'** का अर्थ 'बहना' होता है। अतएव नाड़ियों को एक घटना, एक प्रक्रिया या वह जो प्रवहमान है, मानना चाहिए। **नाड़ियाँ** शरीर के भीतर प्राण के बृहत् यातायात स्नायु-संस्थान को शक्ति प्रदान करतीं तथा उसे आगे-पीछे एवं इच्छित स्थानों में ले जाती हैं। **कुण्डलिनी योग** के अनुसार शरीर में ७२,००० या इससे भी कहीं अधिक **नाड़ियाँ** हैं, जिनसे **प्राण, जीवनी-शक्ति, प्रेरणाएँ** तथा अन्यान्य **ऊर्जाएँ** विद्युत्-तरङ्गों के समान बहती हैं तथा शरीर के विभिन्न कोशों और अङ्गों के स्वास्थ्य तथा ताल-बद्धता को सही-सलामत रखती हैं। इन ७२,००० **नाड़ियों** में **दश नाड़ियाँ** प्रमुख हैं क्योंकि ये शरीर में **चेतना** तथा **प्राण** का वितरण व नियन्त्रण करती हैं।

प्रमुख दस नाड़ियाँ — (१) इड़ा, (२) पिङ्गला, (३) सुषुम्णा, (४) गान्धारी, (५) हस्ति-जिह्वा, (६) पूषा, (७) यशस्विनी, (८) अलम्बुषा, (९) कुहू, (१०) शङ्खिनी।

मेरु-दण्ड के वाम (बाएँ) भाग में **इड़ा,** दक्षिण (दाहिने) भाग में **पिङ्गला,** मध्य में **सुषुम्णा,** बाएँ नेत्र में **गान्धारी,** दाहिने नेत्र में **हस्ति-जिह्वा,** बाँएँ कान में **यशस्विनी,** दाँएँ कान में **पूषा,** मुख में **अलम्बुषा,** लिङ्ग में **कुहू** तथा गुदा में **शङ्खिनी** का बास है। इस प्रकार शरीर के दस द्वारों में **दस नाड़ियाँ** हैं।

उपर्युक्त **दस नाड़ियों** में से तीन अधिक महत्त्व की हैं। यही तीन नाड़ियाँ अन्य दस तथा ७२,००० नाड़ियों को नियन्त्रण में रखती हैं। ये तीन नाड़ियाँ **इड़ा, पिङ्गला** और **सुषुम्णा** हैं। **इड़ा** बाँएँ नासारंध्र से चलनेवाली **चन्द्र नाड़ी** है। उसका वर्ण शुभ्र है और **पिङ्गला** दाहिने नासा-रन्ध्र से चलनेवाली **सूर्य-नाड़ी** रक्त-वर्ण की है। **इड़ा** को **अमृत-विग्रहा** और **पिङ्गला** को **रौद्रात्मिका** भी कहते हैं। ये दोनों नाड़ियाँ **काल-स्वरूप** दिखती हैं। ये दोनों जब सम-गति से चलती हैं, तब **सुषुम्णा नाड़ी** में उनका लय होता है। इसी अवस्था में **सुषुम्णा नाड़ी** में **कुण्डलिनी** प्रवेश करती है। **मूलाधार** से जहाँ ये तीनों निकलती हैं, उसे **'मुक्त त्रिवेणी'** और **'आज्ञा-चक्र'** के समीप जहाँ ये मिलती है, उसे **'युक्त त्रिवेणी'** कहते हैं। **इड़ा— गङ्गा-रूपा, पिङ्गला— यमुना-स्वरूपा** एवं **सुषुम्णा— सरस्वती-रूपिणी** है। ये ही तीनों नाड़ियाँ **आज्ञा-चक्र** के ऊपर जिस स्थान पर जा मिलती हैं, उस स्थान का नाम **'त्रिकूट'** या **'त्रिवेणी'** है। **प्रयाग** की त्रिवेणी में लोग कष्ट से कमाया हुआ रुपया-पैसा खर्च करके और शारीरिक क्लेश उठाकर स्नान करने जाते हैं, किन्तु इन सब नदियों में बाह्य स्नान (बाहर से नहाना) करने पर यदि **मुक्ति** प्राप्त होती, तो आज तीर्थादि के जल में जलचर-जीव-जन्तु नहीं मिलते, क्योंकि वे सबके सब मुक्त हो जाते। शास्त्र में भी कहा है— **अन्तः स्नान-विहीनस्य, बहिः-स्नानेन किं फलम्?**

अन्तः-स्नान-विहीन व्यक्ति को **बाह्य-स्नान** से कोई फल नहीं मिलता। **गुरु की कृपा** से जो **आत्म-तीर्थ** को जानकर **आज्ञा-चक्र** के ऊपर इस **तीर्थ-राज त्रिवेणी** में **मानस स्नान** या **यौगिक स्नान**

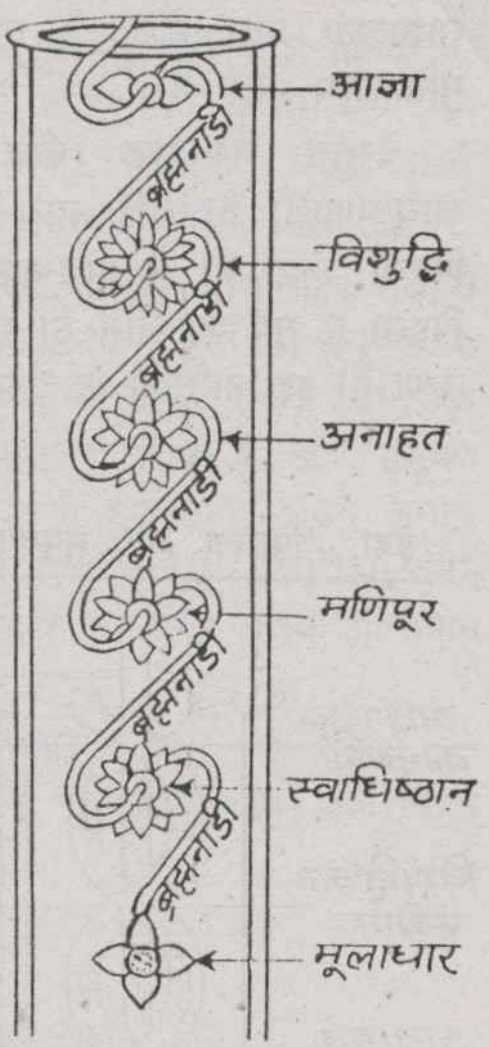

करता है, वह निश्चय ही **मुक्ति-पद-लाभ** करता है। इस शिव-वाक्य में कोई भी सन्देह नहीं।

इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा— इन तीनों प्रधान नाड़ियों में **सुषुम्णा** सर्व-प्रधान है। इसके गर्भ में **वज्राणी** नामक एक नाड़ी है। यह नाड़ी शिश्न-देश से निकलकर शिरः-स्थान तक जाती है। **वज्र-नाड़ी** के बीच में आद्यन्त प्रणव-युक्ता अर्थात् चन्द्र, सूर्य और अग्नि-स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव से आदि एवं अन्त में मिली हुई मकड़ी के जाले की तरह बहुत सूक्ष्म चित्राणी नाम की एक और नाड़ी है। इस **चित्राणी नाड़ी** में पद्म वा चक्र सब गुथे हुए हैं। **चित्राणी नाड़ी** के बीच में एक विद्युत् के समान वर्णवाली (बिजली जैसी) नाड़ी है। उसे **ब्रह्म-नाड़ी** कहते हैं। यह **ब्रह्म-नाड़ी मूलाधार-पद्म**-स्थित **महादेव** के मुख से उत्थित होकर शिर-स्थित **सहस्र-दल** तक फैली हुई है। यथा—

तन्मध्ये चित्राणी सा प्रणव-विलसिता योगिनां योग-गम्यां,
तां तन्तूपमेयां सकल-सरसिजान् मेरु - मध्यान्तरस्थान्।
भित्वा देदीप्यते तद् ग्रथन - रचनया शुद्ध-बुद्धि-प्रबोधा,
तस्यान्तर्ब्रह्म - नाड़ी हर - मुख-कुहरादादि-देवान्त-संस्था॥

—पूर्णानन्द परमहंस कृत 'षट्-चक्र'

ब्रह्म-नाड़ी के विषय में रात-दिन योगियों को ध्यान करना चाहिए, क्योंकि योग-साधना का चरम फल इसी **ब्रह्म-नाड़ी** से प्राप्त होता है। **ब्रह्म-नाड़ी** के अन्दर से गमन कर सकने पर **आत्म**

साक्षात्कार प्राप्त होता है एवं योग का उद्देश्य सिद्ध होकर **मुक्ति-लाभ** होता है।

वस्तुतः मेरु-दण्ड (पीठ की रीढ़) के दोनों तरफ एक स्नायु-प्रणाली है। बाँई स्नायु-प्रणाली को **इड़ा** और दाहिनी को **पिङ्गला** कहते हैं। ये **प्राण-वाहक नाड़ियाँ** हैं। **इड़ा** में **चन्द्र** का व **पिङ्गला** में **सूर्य** का वास है। इसी कारण **इड़ा** शीतल और **पिङ्गला** उष्ण है। **इड़ा** नासिका के वाम और **पिङ्गला** दाहिने रन्ध्र से चलती है। इनमें से प्रत्येक ढाई-ढाई घड़ी (एक घण्टा) चलती है। उन्हीं के अनुसार **स्वर** बदलते रहते हैं। उक्त दोनों नाड़ियों के चलते रहने पर मनुष्य सांसारिक कामों में लगा रहता है।

'इडा,' 'पिङ्गला' और 'सुषुम्णा'

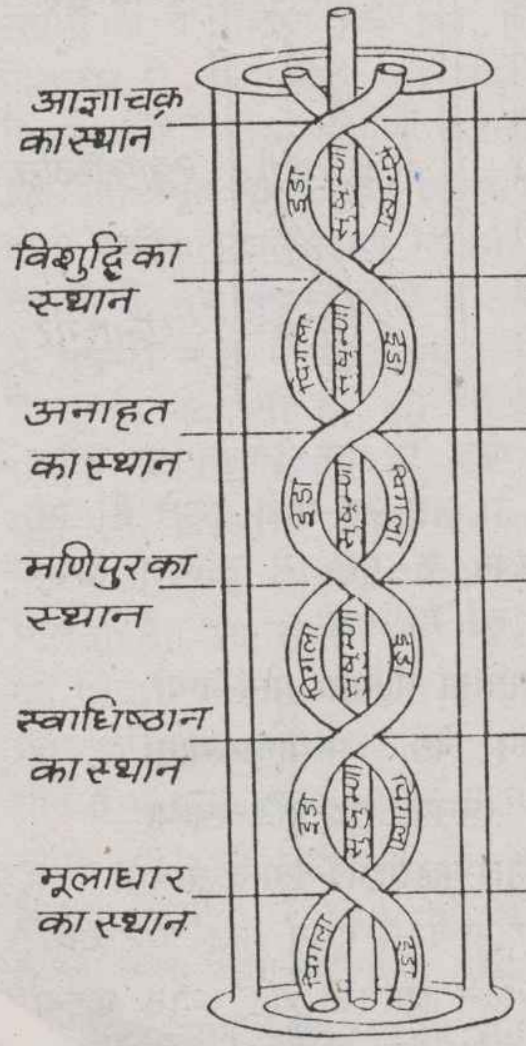

नाड़ी-मण्डल में **सुषुम्णा** सबसे महत्वपूर्ण है। सारा ब्रह्माण्ड इसी पर स्थित है और यही **मोक्ष का मार्ग** है। यह गुदा-मार्ग के पिछले भाग में स्थित और मेरु-दण्ड से लगी हुई सिर में स्थित **ब्रह्म-रन्ध्र** तक चली गई है। इसके दाहिने तरफ **पिङ्गला** और बाँई तरफ **इड़ा** स्थित है। इसके जाग्रत् होते ही योगी का वास्तविक कार्य होने लगता है। उसे **समाधि** लगने लगती है और वह संसार से विमुख हो जाता है। योगी लोग **सुषुम्णा** में प्रवेश करके **महा-प्रयाण** का समय

बदल देते हैं। इसीलिए कहते हैं कि **सुषुम्णा नाड़ी** काल-भक्षक या काल-रोधक है। इसी कारण योगी लोग सदा अपने प्राण को **सुषुम्णा** में, जिसे **ब्रह्म-नाड़ी** भी कहते हैं, चलाने का प्रयत्न करते हैं। यह बहत्तर हजार नाड़ियों को भेदकर व्याप्त रहती है।

इड़ा, पिङ्गला और **सुषुम्णा**- ये तीनों नाड़ियाँ **प्राण-वाहक नाड़ियाँ** हैं और **चन्द्रमा, सूर्य** व **अग्नि** क्रम से इनके देवता हैं। **सुषुम्णा** के समय ध्यान अच्छा लगता है। **सुषुम्णा** के चलते समय ध्यान का अभ्यास करते-करते **कुण्डलिनी** जाग्रत हो जाती है और **सुषुम्णा** में होती हुई **षट्-चक्रों** का भेदन करती हुई ऊपर चढ़ने लगती है। उस समय योगी को अनेक प्रकार के अनुभव, शक्तियाँ और आनन्द प्राप्त होने लगते हैं। इस **नाड़ी** को स्थिर करके **प्राणायाम** करने से वह शीघ्र सिद्ध होता है।

कुण्डलिनी व **षट्-चक्रों** एवं तीन अन्य चक्रों— **१- ललना, २- गुरु, ३- सहस्रार** का विवरण आगे **'कुण्डलिनी-तत्त्व'** प्रकरण में दिया गया है।

* * *

३. कुण्डलिनी-तत्त्व

गुह्य-देश से दो अंगुल ऊपर और लिङ्ग-मूल से दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तृत **'मूलाधार पद्म'** विद्यमान है। उसके बीच पूर्वोक्त **ब्रह्म-नाड़ी** के मुख में **'स्वयम्भू-लिङ्ग'** विद्यमान है। उसके गात्र में दक्षिणावर्त से साढ़े तीन फेरे लगाकर **'कुण्डलिनी'**-शक्ति है। यथा—

पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुद - मेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्दं समाख्यातं, तत्रास्ते कुण्डली सदा॥
संवेष्टा सकला नाड़ीः, सार्ध-त्रि-कुटिलाकृतिः।
मुखे निवेश्य सा पुच्छः, सुषुम्णा-विवरे स्थिता॥

—शिव-संहिता

गुह्य और लिङ्ग— इन दोनों के बीच में पीछे को मुँह किए **'योनि-मण्डल'** है। इस योनि-मण्डल को **'कन्द'** भी कहते हैं। योनि-मण्डल के बीच में **कुण्डलिनी-शक्ति** सब नाड़ियों को लपेट

करके सार्ध-त्रि-कुटिलाकर (साढ़े तीन चक्कर लगाकर) सर्प-रूप से अपनी पूँछ को मुँह में डाल **सुषुम्णा-विवर** को रोक कर अवस्थान कर रही है।

कुण्डलिनी ही नित्यानन्द-स्वरूपा परमा **'प्रकृति'** है। इसके दो मुँह हैं एवं यह **विद्युल्लताकार** (बिजली के समान) तथा **अति सूक्ष्मा** है, जो देखने में **आधे ॐ-कार की प्रतिकृति** जैसी मालूम होती है। सभी प्राणियों के शरीर में **कुण्डलिनी** विराज रही है। पद्म के मध्य में जैसे भ्रमर की अवस्थिति है, वैसे ही देह के बीच में **कुण्डलिनी** विराजित रहती है। इस **कुण्डलिनी** के अभ्यन्तर में केले के कोष जैसे कोमल **मूलाधार** में **'चित्-शक्ति'** विराजित है। उसकी गति अति दुर्लक्ष्य है।

कुण्डलिनी-शक्ति प्रचण्ड स्वर्ण-वर्णा, तेजःस्वरूपा, दीप्ति-मती और सत्व, रज व तम— इन तीन गुणों की प्रसूती **ब्रह्म-शक्ति** है। **कुण्डलिनी शक्ति** ही **इच्छा, क्रिया** और **ज्ञान**— इन तीन नामों में विभक्त होकर समस्त शरीर के चक्रों में भ्रमण करती है। **कुण्डलिनी शक्ति** ही हमारी **जीवनी-शक्ति** है। इस शक्ति को अपने वश में लाना ही **योग-साधना** का उद्देश्य है।

कुण्डलिनी-शक्ति जीवात्मा की प्राण-स्वरूप है, किन्तु **कुण्डलिनी-शक्ति** ब्रह्म-द्वार को रोककर सुख से सोती है, उसी से जीवात्मा **रिपु (काम, क्रोध, मद, लोभ** और **मोह)** और इन्द्रिय- गण द्वारा चालित होकर अहं-भावापन्न हुआ है एवं अज्ञान की माया से आच्छन्न होकर सुख-दुःखादि के भ्रान्ति ज्ञान से कर्म-फल का भोग कर रहा है। **कुण्डलिनी-शक्ति** के न जागने पर शत-शत शास्त्र पढ़ने से या गुरु के उपदेश सुनने पर भी प्रकृत ज्ञान उत्पन्न नहीं होता एवं जप-तप और साधन-भजन सब वृथा हो जाता है। यथा—

मूल-पद्मे कुण्डलिनी, यावन्निद्रायिता प्रभो!
तावत् किञ्चन्न सिध्येत, मन्त्र-यन्त्रार्च्चनादिकम्॥
जागर्ति यदि सा देवि! बहुभिः पुण्य-सञ्चयैः।
तदा प्रसादमायाति, मन्त्र - यन्त्रार्च्चनादिकम्॥

—गौतमीय तन्त्र

मूलाधार-स्थित **कुण्डलिनी-शक्ति** जब तक न जागे, तब तक **मन्त्र-जप** और **यन्त्रादि से पूजार्च्चना** सब विफल हैं। यदि पुण्य के प्रभाव से यह **शक्ति-देवी** जाग उठे, तो **मन्त्र-जपादि** का सब फल सिद्ध हो सकता है।

योग के अनुष्ठान द्वारा **कुण्डलिनी** का चैतन्य-सम्पादन करना ही मानव जीवन का पूर्णत्व है। भक्ति-पूर्ण चित्त से प्रति-दिन **कुण्डलिनी-शक्ति का ध्यान-पाठ** करने पर साधक को इस शक्ति के सम्बन्ध में ज्ञान उत्पन्न होता है एवं यह शक्ति धीरे-धीरे जाग्रत होती है। **'कुण्डलिनी'** का ध्यान, इस प्रकार है—

ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मां, मूलाधार-निवासिनीम्,
तामिष्ट - देवता -रूपां, सार्द्ध-त्रि-वलयान्विताम्।
कोटि-सौदामिनी-भासां, स्वयम्भू-लिङ्ग-वेष्टिताम्॥

वस्तुतः मनुष्य की जीवनी-शक्ति **कुण्डलिनी** का निवास **मूलाधार** में है और यहीं पर **स्वयम्भू-लिङ्ग** अवस्थित है। केले के तन्तु के समान **कुण्डलिनी स्वयम्भू-लिङ्ग** को साढ़े तीन चक्करों से वेष्ठित कर अपने मुख से **सुषुम्णा-पथ** को रोककर **सुषुप्तावस्था** में स्थित है। योग आदि अनेक क्रियाओं द्वारा साधक को इसी सुषुप्त शक्ति को जागृत कर **सुषुम्णा-पथ** से, जिसे **ब्रह्म-नाड़ी** भी कहते हैं, **ब्रह्म-रन्ध्र** तक पहुँचाना पड़ता है। इस यात्रा में **कुण्डलिनी** को कई ग्रन्थि-रूप स्थानों (**चक्रों**) से गुजरना पड़ता है, जिनका विवरण यथा-स्थान आगे दिया गया है। **मूलाधार** में स्थित इस **कुण्डलिनी** को **अधो-कुण्डलिनी** कहते हैं।

जिस प्रकार यह **अधो-कुण्डलिनी** है, उसी भाँति **ब्रह्म-रन्ध्र** में एक और **कुण्डलिनी** है, जिसे **ऊर्ध्व-कुण्डलिनी** कहते हैं। **योग-साधना** द्वारा शाक्त साधक इन्हीं **दोनों कुण्डलिनियों का सहस्रार अथवा मूलाधार में सायुज्य** कराते हैं। यह मिथुन ही **शिव-शक्ति का सायुज्य** कहलाता है।

कुण्डलिनी सर्पाकार या वलयाकार शक्ति कही जाती है, क्योंकि इसकी गति वलयाकार सर्प की सी है। योगाभ्यासी व्यक्ति के शरीर में यह चक्राकार चलती है और उसमें शक्ति बढ़ाती है। यह एक वैद्युत् अग्नि-मय गुप्त शक्ति है। **कुण्डलिनी** की गति प्रकाश

की गति की अपेक्षा भी अधिक तेज है। मैडम ब्लैवेट्स्की ने कहा है— प्रकाश १,८५,००० मील प्रति सेकेण्ड की गति से चलता है और **कुण्डलिनी** ३,४५,००० मील प्रति सेकेण्ड की चाल से चलती है। पाश्चात्य लोग इस **कुण्डलिनी** को **'सर्प-वलयान्विता अग्नि' (सर्पेण्ट फॉयर)** कहते हैं तथा **विश्व-व्यापी विद्युत्-शक्ति (कॉस्मिक एनर्जी)** भी कहते हैं। यह प्रचण्ड शक्ति शरीरस्थ **मूलाधार चक्र** में सोयी हुई रहती है।

कुण्डलिनी को चैतन्य करने की विधि अत्यन्त विस्तृत व गुरु-गम्य है, परन्तु पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ **कुण्डलिनी** को जागृत करने के दो अत्यन्त सरल व सहज उपाय लिख रहे हैं—

(१) **सिद्धासन** से बैठकर हृदय पर मजबूती से ठुड्ढी रखे, पीछे दोनों हाथों से मुट्ठी बाँधकर दोनों हाथों की कुहनी हृदय पर दृढ़ रूप से रख नाभि-देश में वायु धारण करें एवं गुह्य देश को **अश्विनी मुद्रा** से सिकोड़ता और फैलाता रहे। ऐसा नित्य अभ्यास करने से **कुण्डलिनी** शीघ्र ही चैतन्य होगी।

(२) दाहिने अँगूठे से दक्षिण नासा-रन्ध्र को बन्द करके धीरे-धीरे तीन बार ॐ कहते हुए वाम नासा-रन्ध्र से **पूरक** कीजिए और ध्यान करिए कि ऊर्ध्व वायु से प्राण खींच रहे हैं। इसके पश्चात् दाहिने हाथ की अनामिका और कनिष्ठिका अँगुलियों से वाम नासा-रन्ध्र भी बन्द कर दीजिए। बारह बार **'ॐ'** कहते हुए श्वास स्थिर रखिए और **मूलाधार चक्र** में श्वास को रीढ़ से पहुँचाइए। ध्यान करिए कि श्वास-धारा **मूलाधार-चक्र** को छूती व **कुण्डलिनी** को जागृत करती है। छः बार **'ॐ'** कहते हुए दक्षिण नासा-रन्ध्र से धीरे-धीरे रेचक करिए। अपनी शक्ति व योग्यता के अनुसार संख्या व समय को धीरे-धीरे बढ़ाइए। इस **प्राणायाम** में **मूलाधार चक्र** पर ध्यान एकाग्र करना अत्यन्त आवश्यक है। उक्त चक्र पर पूर्ण रीति से ध्यान व नियम-पूर्वक नित्य **प्राणायाम** करने से **कुण्डलिनी** शीघ्र जागृत होती है।

* * *

४. चक्रादि-वर्णन

मूलाधार-चक्र

मानव-देह के गुह्य-देश से दो अंगुल ऊपर और लिंग-मूल से दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तृत **योनि-मण्डल** विद्यमान है, उसके ऊपर **'मूलाधार'-पद्म** अवस्थित है। यह अल्प रक्त-वर्ण और चतुर्दल विशिष्ट है, जिसकी चारों पँखुरियाँ **'वं, शं, षं, सं'**— इन चार वर्णों से सजी हैं। इन चार वर्णों का रंग सोने जैसा है। इस पद्म की कर्णिका के बीच में अष्ट-शूल से शोभित चतुष्कोण (चौकोना) **'पृथ्वी-मण्डल'** है। उसकी एक बगल में पृथ्वी-बीज **'लं'** विद्यमान है। उसके बीच में पृथ्वी-बीज के प्रतिपाद्य **'इन्द्र-देव'** विराजित हैं। **इन्द्र-देव** के **चार हाथ** हैं और उनका **पीत-वर्ण** है एवं वे **सफेद हाथी** पर बैठे हुए हैं। **इन्द्र-देव** की गोद में शैशवावस्था में **चतुर्भुज 'ब्रह्मा'** विराजित हैं। **ब्रह्मा जी** की गोद में **रक्त-वर्णा, चतुर्भुजा** और सालंकृता **'डाकिनी'**-नाम्नी उनकी शक्ति विराजती है।

'लं'-बीज के दक्षिण भाग में काम-कला-रूप रक्त-वर्ण **त्रिकोण-मण्डल** विद्यमान है। उसके बीच में तेजो-मय, रक्त-वर्ण **'क्लीं'** बीज-रूप **कन्दर्प** नामक रक्त-वर्ण स्थिर-तर **'वायु-मण्डल'** है। उसके बीच में ठीक **ब्रह्म-नाड़ी** के मुख पर **'स्वयम्भू-लिङ्ग'** विद्यमान है। यह लिङ्ग रक्त-वर्ण और कोटि-सूर्य की भाँति तेजो-मय है। इसके शरीर में साढ़े तीन फेर लगी हुई **कुण्डलिनी-शक्ति** विद्यमान है। इस **कुल-कुण्डलिनी-शक्ति** के अभ्यन्तर **'चित्-शक्ति'** विराज रही है। यह **कुण्डलिनी-शक्ति** सबके लिए **इष्ट-देवी-स्वरूपिणी** है एवं **मूलाधार-चक्र** मानव-देह का

मूलाधार-चक्र

आधार-स्वरूप है, इसलिए इसका दूसरा नाम **'आधार पद्म'** है। साधन-भजन का मूल इसी स्थान में है, इसीलिए इसे **मूलाधार-पद्म** कहते हैं।

मूलाधार पद्म का ध्यान करने से गद्य-पद्यादि, वाक्-सिद्धि और आरोग्यादि मिलते हैं।

*

स्वाधिष्ठान-चक्र

लिङ्ग के मूल में रहनेवाले द्वितीय पद्म का नाम **'स्वाधिष्ठान'** है। यह सु-प्रदीप्त (खूब चमकीला), **अरुण-वर्ण** और षड्-दल-विशिष्ट है— **बं, भं, मं, यं, रं, लं'**— ये छः मातृका-वर्णात्मक हैं। प्रत्येक दल में १ अवज्ञा, २ मूर्च्छा, ३ प्रश्रय, ४ अविश्वास, ५ सर्वनाश और ६ क्रूरता— ये छः वृत्तियाँ भरी हुई हैं। इसके कर्णिकाभ्यन्तर में श्वेत-वर्ण अर्ध-चन्द्राकार **'वरुण-मण्डल'** विराजमान है। उसके बीच में श्वेत-वर्ण वरुण-बीज **'वं'** विद्यमान है। उसके बीच में वरुण-बीज के प्रतिपाद्य **श्वेत-वर्ण द्वि-भुज वरुण देवता मकर** पर अधिष्ठित हैं। उनकी गोद में जगत् के पालनेवाले नव-यौवन-सम्पन्न **'हरि'** विराज रहे हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे **शङ्ख, चक्र, गदा** और **पद्म** धारण किए हैं। वक्ष-स्थल में श्रीवत्स-कौस्तुभ शोभित है एवं पीताम्बर पहिने हुए हैं। इनकी गोद में दिव्य-वस्त्र और आभरण-भूषिता, चतुर्भुजा

स्वाधिष्ठान-चक्र

गौर-वर्णा **'राकिनी'**-नाम्नी इनकी शक्ति विराज रही है।

स्वाधिष्ठान-पद्म का ध्यान करने से भक्ति, आरोग्य और प्रभुत्वादि की सिद्धि मिलती है।

*

मणिपूर-चक्र

नाभि-देश में तृतीय पद्म **मणिपूर** अवस्थित है। यह **मेघ-वर्ण** (बादल जैसा) दश-दल-युक्त है। दश-दल— **डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं**— ये दश मातृका-वर्णात्मक हैं। ये दशों वर्ण नीले हैं। प्रत्येक दल (पँखुरी) में १ लज्जा, २ पिशुनता, ३ ईर्ष्या, ४ सुषुप्ति, ५ विषाद, ६ कषाय, ७ तृष्णा, ८ मोह, ९ घृणा और १० भय— ये दश वृत्तियाँ हैं। **मणिपूर** पद्म की कर्णिका के बीच में रक्त-वर्ण त्रिकोण **'वह्नि-मण्डल'** विद्यमान है। उसके बीच में वह्नि (अग्नि) बीज **'रं'** विद्यमान है, यह भी रक्त-वर्ण है। इस वह्नि-बीज के बीच में उसके प्रतिपाद्य चार हाथवाले रक्त-वर्ण **'अग्नि-देव'** **मेढ़ारोहण** कर अधिष्ठित हैं। उनकी गोद में जगत् का नांश करनेवाले भस्म-भूषित सिन्दूर-वर्ण **'रुद्र'** व्याघ्र-चर्म के आसन पर बैठे हैं। उनके दो हाथ हैं। इन दोनों हाथों में **वर** और **अभय** शोभा पा रहे हैं। उनके तीन आँखें हैं और वे **व्याघ्र-चर्म** पहने हुए हैं। उनकी गोद में पीत-वसन-परिधाना, नानालङ्कार-भूषिता, चतुर्भजा, सिन्दूर-वर्णा **'लाकिनी'**-नाम्नी उनकी शक्ति विराज रही हैं।

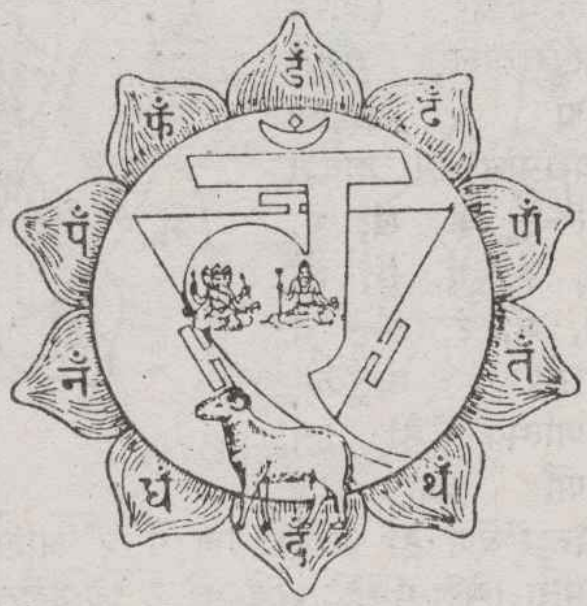

मणिपुर चक्र

मणिपूर-पद्म का ध्यान करने से आरोग्य, ऐश्वर्यादि मिलते हैं एवं जगत् के पालन एवं नाशादि करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

अनाहत-चक्र

अनाहत-चक्र

हृदय में बन्धूक-पुष्प-सदृश (कुँदरू के फूल जैसा) वर्ण-विशिष्ट द्वादश-दल-युक्त (बारह पँखुरावाला) चतुर्थ पद्म **अनाहत** विद्यमान है। द्वादश दल— **कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं**— ये बारह मातृका-वर्णात्मक हैं। इन वर्णों का रङ्ग सिन्दूर-वर्ण है। प्रत्येक देल में १ आशा, २ चिन्ता, ३ चेष्टा, ४ ममता (मेरा-पन), ५ दम्भ, ६ विकलता (चञ्चलता), ७ विवेक, ८ अंहकार, ९ लोलुपता (लोभ), १० कपट, ११ वितर्क और १२ अनुताप— ये बारह वृत्तियाँ हैं। इस पद्म की कर्णिका के भीतर अरुण-वर्ण **सूर्य-मण्डल** एवं धूम्र-वर्ण षट्-कोण-विशिष्ट **'वायु-मण्डल'** विद्यमान है। इसकी एक बगल में धूम्र-वर्ण, वायु-बीज **'यं'** विद्यमान है। इस वायु-बीज के बीच में उसके प्रतिपाद्य धूम्र-वर्ण, चतुर्भुज **'वायुदेव' कृष्ण-सार (काले हरिण)** पर अधिरोहण कर अधिष्ठित हैं। उनकी गोद में वराभय-लसिता, त्रिनेत्रा, सर्वालङ्कार-भूषिता, मुण्ड-माला-धरा, पीत-वर्णा **'काकिनी'**-नाम्नी उनकी शक्ति विराजित है। इस **अनाहत-पद्म** के बीच में विद्यमान **बाण लिङ्ग** शिव और जीवात्मा का विषय **हंस-तत्त्व** में वर्णित है।

अनाहत-पद्म का ध्यान करने से अणिमादि अष्टैश्वर्यों का लाभ होता है।

*

विशुद्ध-चक्र

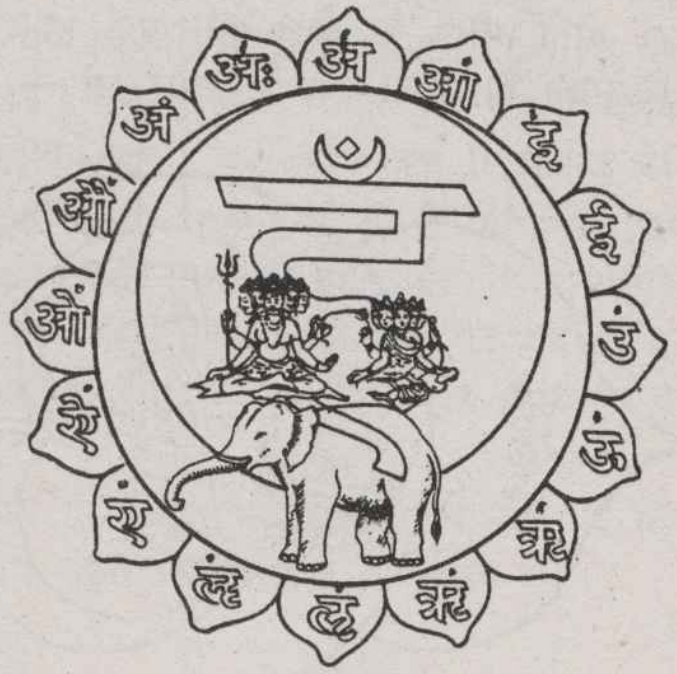

विशुद्ध-चक्र

कण्ठ-देश में धूम-वर्ण षोडश-दल (सोलह पँखुरी) विशिष्ट **विशुद्ध-पद्म** अवस्थित है। षोडश दल— **अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, ऌं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः**— ये सोलह मातृका-वर्णात्मक हैं। इन वर्णों का वर्ण कचनार-पुष्प जैसा होता है। प्रत्येक दल में १ निषाद, २ ऋषभ, ३ गन्धार, ४ षडज, ५ मध्यम, ६ धैवत, ७ पञ्चम— ये सप्त स्वर और **हुं, फट्, स्वाहा, नमः, विष** और **अमृत** प्रभृति विद्यमान हैं। इस पद्म की कर्णिका में श्वेत-वर्ण चन्द्र-मण्डल के बीच में स्फटिक-समान वर्ण-विशिष्ट आकाश-बीज **'हं'** विद्यमान हैं। उसके बीच में **'हं'** बीज के प्रतिपाद्य **'आकाश'** देवता **श्वेत हाथी** पर सवार हैं। उनके चार हाथ हैं। चार हाथों में **पाश, अंकुश, वर** और **अभय** शोभा पा रहे हैं। आकाश देवता की गोद में त्रिलोचनान्वित पञ्च-मुख-लसित दश-भुजावाले, सदसत्-कर्म-नियोजक, व्याघ्र-चर्माम्बर पहने **'सदाशिव'** विराजमान हैं। इनकी गोद में **शर, चाप, पाश** और **शूल**-युक्ता, **चतुर्भुजा** पीत-वसना, रक्त-वर्णा **'शाकिनी'**-नाम्नी तत्-शक्ति अर्द्धाङ्गिनी-रूप में विराजित हैं। इन **'अर्द्ध-नारीश्वर शिव'** के पास सभी बीज-मन्त्र या मूल-मन्त्र विद्यमान हैं।

विशुद्ध-पद्म का ध्यान करने पर जरा और मृत्यु-पाश दूर होकर भोगादि प्राप्त होते हैं।

*

आज्ञा-चक्र

दोनों भौहों के बीच श्वेत-वर्ण द्वि-दल-विशिष्ट **'आज्ञा-पद्म'** विद्यमान है। वे दो दल **'हं'** और **'क्षं'**— वर्णात्मक हैं। इस पद्म

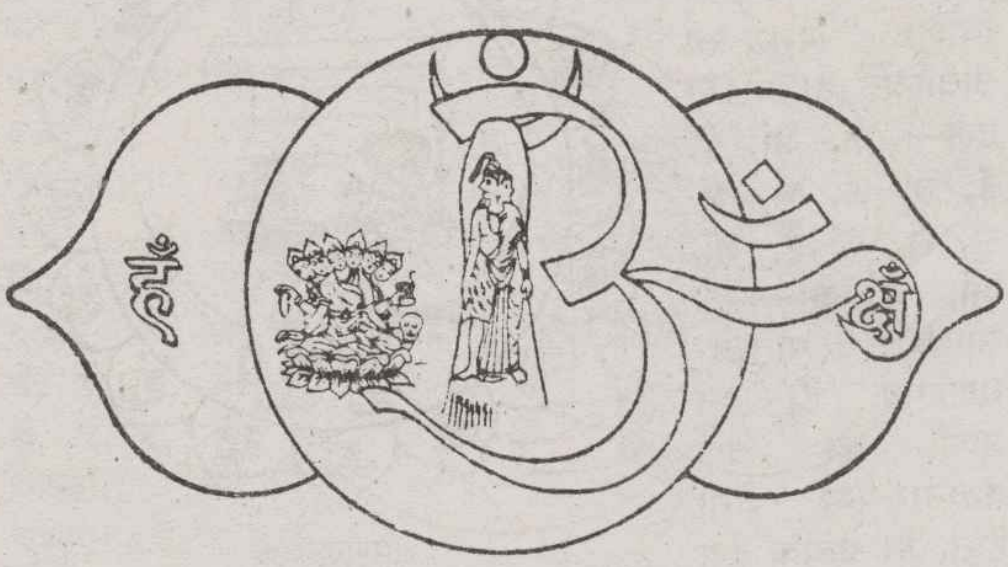

की कर्णिका के भीतर शरत् के चन्द्र जैसा निर्मल श्वेत-वर्ण **त्रिकोण-मण्डल** विद्यमान है। त्रिकोण के तीनों कोणों में सत्व, रज और तम— ये तीन गुण एवं तीनों गुणवाले **ब्रह्मा, विष्णु** और **शिव**— तीन देव विराज रहे हैं। त्रिकोण-मण्डल के बीच में शुक्ल-वर्ण **'चंद्र-बीज ठं'** दीप्तिमान है। त्रिकोण-मण्डल के बगल में **श्वेत-वर्ण बिन्दु** विराजित है। उसकी बगल में चन्द्र-बीज के प्रतिपाद्य वर और अभय से शोभित **द्वि-भुज,** जगन्निधान-स्वरूप, **श्वेत-वर्ण,** त्रिनेत्र **'ज्ञान-दाता शिव'** विराजित हैं। उनकी गोद में चन्द्रमा की भाँति श्वेत-वर्णा, षड्-वदना, विद्या-कपाल-डमरु-जप-यटिका-वराभय-शर-चापांकुश-पाश - पंकज - लसिता द्वादश-भुजा **'हाकिनी'**-नाम्नी तत्-शक्ति विराजती हैं।

आज्ञा-चक्र के ऊपर **इड़ा, पिङ्गला** और **सुषुम्णा**— इन तीनों नाड़ियों के मिलने का स्थान है। इस स्थान का नाम **'त्रिकूट'** या **'त्रिवेणी'** है। इस **'त्रिवेणी'** के ऊपर **सुषुम्णा** के मुँह के नीचे अर्द्ध चन्द्राकार मण्डल विद्यमान है। अर्द्ध-चन्द्र के ऊपर तेजःपुंज-स्वरूप

एक **बिन्दु** है। इस **बिन्दु** के ऊपर उद्य-नीच भाव से दण्डाकार **नाद** विद्यमान है। यह **नाद** देखने में ठीक एक तेजो-रेखा के समान है। इसके ऊपर श्वेत-वर्ण त्रिकोण-मण्डल विद्यमान है। उसके बीच में शक्ति-रुप शिवाकार **ह**-करार्द्ध है। इस स्थान में वायु-क्रिया का अन्त हो गया है। इसकी दूसरी बातें **प्रणव-तत्व** में वर्णित हैं।

आज्ञा-पद्म एक दूसरा नाम **'ज्ञान-पद्म'** भी है। **परमात्मा** इसके अधिष्ठाता हैं एवं **इच्छा** उनकी शक्ति है। यहाँ प्रदीप्त-शिखा-रूपिणी आत्म-ज्योति सुन्दर पीले स्वर्ण-रेणु की भाँति विराजमान है। इस स्थान में जो ज्योति दर्शन होता है, वही साधक का आत्म-प्रतिबिम्ब है।

आज्ञा-पद्म के ध्यान द्वारा **दिव्य ज्योति** के दर्शन पाने पर योग का चरम फल अर्थात् **प्रकृत निर्वाण** प्राप्त हो जाता है।

*

ललना-चक्र

तालु के मूल में रक्त-वर्ण चौंसठ दलवाला **'ललना-चक्र'** अधिष्ठित है। इस पद्म में **'अहं-तत्त्व'** का स्थान है। यहाँ १ श्रद्धा, २ सन्तोष, ३ स्नेह, ४ दम, ५ मान, ६ अपराध, ७ शोक, ८ खेद, ९ अरति, १० सम्भ्रम, ११ ऊर्मि और १२ शुद्धता— ये बारह वृत्तियाँ एवं अमृत-स्थली विद्यमान हैं।

ललना-पद्म का ध्यान करने से उन्माद, ज्वर, पित्तादि-जनित दाह, शूलादि, शिर-पीड़ा और शरीर की जड़ता मिट जाती है।

*

गुरु-चक्र

ब्रह्म-रन्ध्र में श्वेत-वर्ण शत-दल (सौ पँखुरीवाला) अष्टम पद्म **'गुरु-चक्र'** अवस्थित है। इस पद्म की कर्णिका में त्रिकोण-मण्डल विद्यमान है। इस त्रिकोण-मण्डल के तीनों कोणों में यथा-क्रम— **'हं, ळं क्षं'**— ये तीन वर्ण हैं। इसके सिवा तीनों ओर समस्त

मातृका-वर्ण विद्यमान हैं। इसी त्रिकोण-मण्डल को **'योनि-पीठ'** और **'शक्ति-मण्डल'** भी कहते हैं। इस शक्ति के बीच में तेजो-मय **'काम-कला-मूर्ति'** विद्यमान है। मस्तक में एक तेजो-मय बिन्दु है। उसके ऊपर दण्डाकार **तेजो-मय नाद** विद्यमान है।

नाद के ऊपर निर्धूम अग्नि-शिखा की भाँति (बिना धुँए की अग्नि की ज्वाला की तरह) **तेजःपुञ्ज** विद्यमान है। उसके ऊपर **हंस-पक्षी** के पलंग-जैसा **तेजो-मय पीठ** है। उसके ऊपर एक **हंस** विराजमान है। इस **हंस** का शरीर ज्ञान-मय है और उसके दोनों पक्ष (बाजू) **आगम** और **निगम** हैं। उसके दोनों चरण **शिव-शक्ति-मय,** चोंच **प्रणव**-स्वरूप एवं आँख और कण्ठ **काम-कला-रूप** है। यह **हंस** ही **गुरु-देव के पाद-पीठ-स्वरूप** है।

हंस के ऊपर श्वेत-वर्ण **'वाग्भव' (गुरु-बीज) 'ऐं'** विद्यमान है। उसकी बगल में तद्-बीज-प्रतिपाद्य **'गुरु-देव'** विराज रहे हैं। उनका वर्ण श्वेत एवं कोटि-सूर्य की भाँति तेजः-पुञ्ज-स्वरूप है। उनके दो हाथ हैं— एक हाथ में वर और दूसरे हाथ में अभय शोभा पा रहे है। वे श्वेत-माला और श्वेत गन्ध धारण किए हुए हैं एवं श्वेत-वस्त्र पहनकर हास्य-मुख से करुण दृष्टि से कृपा का अमृत बरसा रहे हैं। उनकी बाँईं तरफ की गोद में रक्त-वर्ण कपड़े पहने सर्व-भूषिता तरुण-अरुण-सदृश रक्त-वर्णा **'गुरु-पत्नी'** विराज रही हैं। उनके बाँएँ हाथ में एक कमल है एवं दाहिने हाथ से वे श्रीगुरु-देव के शरीर को लपेटे बैठी हैं। **श्रीगुरु** और गुरु-पत्नी के मस्तक पर **सहस्र-दल-पद्म** छत्री की भाँति शोभा पा रहा है।

शत-दल पद्म में **हंस-पीठ** के ऊपर **गुरु-पादुका** एवं सबके गुरु विराजमान हैं। ये ही अखण्ड-मण्डलाकार से चराचर में व्याप्त हो विराजमान हैं। इस पद्म में ऊपर लिखे हुए प्रकार से **सपत्नीक गुरुदेव का ध्यान** करना होता है।

शत-दल गुरु-पद्म का ध्यान करने से सर्व-सिद्धि और दिव्य-ज्ञान का प्रकाश होता है।

*

सहस्रार-चक्र

ब्रह्म-रन्ध्र के ऊपर **महा-शून्य** में रक्त किंजल्क (केसर-रेणु) श्वेत-वर्ण सहस्र-दल-विशिष्ट नवाँ चक्र **'सहस्रार'** अवस्थित है। **सहस्र-दल पद्म** के चारों ओर पचास दल विराजित हैं एवं लगातार एक दूसरे पर बीस स्तर में सजे हुए हैं। प्रत्येक स्तर के पचास दलों में क्रमशः **पचास मातृका-वर्ण** विद्यमान हैं।

सहस्र-दल-कमल की कर्णिका के भीतर त्रिकोण चन्द्र-मण्डल विद्यमान है। उसका दूसरा नाम **'शक्ति-मण्डल'** है। इस शक्ति-मण्डल के तीनों कोणों पर यथा-क्रम से **'हं, ळं, क्षं'** — ये तीन वर्ण एवं तीनों ओर सब **स्वर** और **व्यञ्जन** वर्ण सन्निविष्ट हैं।

शक्ति-मण्डल के बीच में **तेजो-मय विसर्ग** के आकार का मण्डल-विशेष विद्यमान है। उसके ऊपर दो-पहर के कोटि सूर्य-स्वरूप तेजः-पुञ्ज एक बिन्दु विराजमान है, वह विशुद्ध स्फटिक की भाँति श्वेत-वर्ण है। यह **बिन्दु** ही **'परम-शिव'** नामक जगत् के उत्पादक, पालक और नाश-कारक परमेश्वर हैं। यही अज्ञान के अंधकार का नाश करनेवाले सूर्य-स्वरूप **परमात्मा** हैं। इन्हीं को भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते हैं। साधन के बल से इस बिन्दु को प्रत्यक्ष करने का नाम **'ब्रह्म-साक्षात्कार'** है।

परम-शिव-स्वरूप बिन्दु सर्वदा गली हुई **सुधा** (अमृत-द्रव) के समान है। इसके बीच में समस्त सुधा की आधार, गो-मूत्र के वर्ण-जैसी **'अमा'**-नाम की कला, विद्यमान है। यही **'आनन्द-भैरवी'** है। इसके बीच में अर्द्ध-चन्द्रा-कार **'निर्वाण-काम-कला'** विद्यमान है।

यह **निर्वाण काम-कला** ही सबकी इष्ट-देवता है। उसके बीच में तेजो-रूप **परम निर्वाण-शक्ति** शोभित है, आगे **'निराकार महा-शून्य'** है।

सहस्र-दल पद्म में **कल्प-वृक्ष** विद्यमान है। इसकी जड़ में चार दरवाजेवाला **ज्योतिर्मन्दिर** है, उसके बीच में **पञ्च-दश-अक्षरात्मिका वेदिका** है। उसके ऊपर रत्न के सिंहासन में चणकाकार **महा-काली** और **महा-रुद्र** विराज रहे हैं। वे **महा-ज्योतिर्मय** हैं। इन्ही का नाम **चिन्ता-मणि** के घर में **माया से आच्छादित परमात्मा** है।

सहस्र-दल का ध्यान करने से जगदीश्वरत्व प्राप्त होता है।

नव-चक्रों का ध्यान करते समय एक मुख्य बात जान लेनी चाहिए। वह यह कि इन पद्मों के मुँह सभी ओर हैं, किन्तु भोगी अर्थात् फल की कामना रखनेवाले साधकों को सभी पद्मों का, नीचे की तरफ मुख किए हुए रूप में ध्यान करना चाहिए और जो योगी है अर्थात् जिन्हें मोक्ष पाने की इच्छा है, उन्हें पद्म को ऊपर मुँहवाले जानकर ध्यान करना चाहिए। दूसरे शब्दों में भाव के भेद से **ऊर्ध्व और अधः मुँहवाले पद्मों का ध्यान** करना चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ये पद्म बहुत ही सूक्ष्म हैं, इनकी भावना न हो सकने के कारण इन्हें चार अंगुल के आकार की कल्पना कर **ध्यान** करना चाहिए।

* * *

५. षोडशाधार

पादांगुष्ठौ च गुल्फौ च .....।
पायु-मूलं तथा पश्चाद्, देह-मध्यं च मेढ्रकं॥
नाभिश्च हृदयं गार्गि! कण्ठ-कूपस्तथैव च।
तालु-मूलं च नासायां, मूलं चाक्ष्णोश्च मण्डले॥
भ्रुवोर्मध्यं ललाटश्च, मूर्द्धा च मुनि - पुङ्गवे॥

—योगी याज्ञवल्क्य

अर्थात् १ दाहिने पैर का अँगूठा, २ पैर के गुल्फ (पाद-मूल), ३ गुह्य-देश, ४ लिङ्ग-मूल, ५ नाभि-मण्डल, ६ हृदय,

७ कण्ठ-कूप (गले का गड्ढा), ८ जीभ की नोंक, ९ दाँत का मसूढ़ा, १० तालु-मूल, ११ नाक की नोक, १२ भौंह का मध्य-भाग, १३ आँख का आधार, १४ ललाट, १५ मूर्द्धा (खोपड़ी), १६ सहस्रार— यही **सोलह 'आधार'** हैं। इनमें से एक-एक स्थान में क्रिया-विशेष के अनुष्ठान से **लय-योग** का साधन करना होता है।

* * *

६. त्रि-लक्ष्य

आदि-लक्ष्यः स्वयम्भूश्च, द्वितीयं बाण-संज्ञकम्।
इतरं तत्-परे देवि! ज्योति-रूपं सदा भज॥

अर्थात् १ **स्वयम्भू-लिङ्ग**, २ **बाण-लिङ्ग** और ३ **इतर-लिङ्ग**— इन्हीं तीन लिङ्गों को **'त्रि-लक्ष्य'** कहते हैं। ये तीनों लिङ्ग यथा-क्रम **मूलाधार, अनाहत** और **आज्ञा-चक्र** में अधिष्ठित हैं।

* * *

७. व्योम-पञ्चक

आकाशं तु महाकाशं, पराकाशं परात्परम्।
तत्त्वाकाशं सूर्याकाशं, आकाशं पञ्च-लक्षणम्॥

अर्थात् १ आकाश, २ महाकाश, ३ पराकाश, ४ तत्त्वाकाश और ५ सूर्याकाश— इन्हीं को **'पञ्च-व्योम'** कहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश— इन्हीं पञ्च-तत्वों को **'पञ्चाकाश'** कहते हैं। **पञ्चाकाश** के रहने की जगह **शरीर-तत्त्व** में वर्णन की गई है।

* * *

८. हठ-योग और स्वर

'ह'-शब्द से **सूर्य** एवं **'ठ'**-शब्द से **चन्द्र** समझा जाता है। **'हठ'**-शब्द में **चन्द्र-सूर्य** को एक जगह मिलाया है। **अपान**-वायु का नाम **चन्द्र** एवं **प्राण**-वायु का नाम **सूर्य** है। अतएव **प्राण** और

अपान-वायु को एक जगह मिलाने का नाम **'हठ-योग'** है। यथा—

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठ-योगो निगद्यते।।

—सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति

'ह' माने सूर्य, **'ठ'** से चन्द्रमा अर्थात् दाहिने और बाँएँ नासाग्र में बहनेवाली **इड़ा** और **पिंगला** नाड़ी। इनके संयोग से **सुषुम्णा नाड़ी** के उत्थान का साधन तथा **मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत** व **आज्ञा** आदि **षट्-चक्रों का भेदन** करने को **हठ-योग** कहते हैं।

'ह' माने **सूर्य, पिंगला,** दाहिनी ओर की वायु और **'ठ'** माने **चन्द्र, इड़ा,** बाँएँ ओर की वायु। वायु को अन्दर खींचना है **'ह'** और बाहर छोड़ना है **'ठ'**। **सूर्य** (दक्षिण स्वर) और **चन्द्र** (वाम स्वर) दोनों की समता का नाम **हठ-योग** है। नासिका के अग्र-भाग से यह प्राण-वायु बारह अंगुल पर्यन्त बाहर जाता है और पुनः लौटकर नाभि में आना इसकी स्वाभाविक गति है। **प्राणायाम** के बल से साधक प्राण-वायु की गति को एक-एक, दो-दो अंगुल घटाए, जब द्वादश अंगुल बाहर की गति बंद हो जाए और केवल नासिका के भीतर ही दोनों स्वर सम होकर **सुषुम्णा नाड़ी** में जिस अवस्था में चलें, उस अवस्था का नाम **'हठ'** है, अर्थात् **प्राण-निरोध द्वारा मन का निरोध** करना **'हठ-योग'** है।

योगाभ्यासियों के लिए **हठ-योग** का विषय बड़ा ही आवश्यक है, किन्तु आज **हठ - योग** की जानकारी सर्व-सुलभ नहीं है। **'स्वर'** ही **हठ-योग** का मूलाधार है। बिना **'स्वर-ज्ञान'** के योगाभ्यास की साधना हो ही नहीं सकती। **'स्वर'** ही जीवन है, **स्वर-साधना** ही अमरत्व है और **स्वर-साधना** के प्रति उदासीनता ही मृत्यु है। योगाभ्यास में **स्वर-साधना** का केन्द्र **हठ-योग** ही है। **हठ-योग** में **षट्-कर्म** प्रमुख होते हैं। इन्हीं के माध्यम से **स्वर-साधना** का दृढ़ीकरण होता है। **षट्-कर्मों** के द्वारा ही शरीर में स्थित त्रि-धातुओं— वात, पित्त, कफ का शोधन और परिष्करण होता है। पाँच-भौतिक (१ क्षिति, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश) स्थूल शरीर में त्रि-धातुओं के सम होने पर ही

नैमित्तिक षट्-कर्म की साधना सुलभ होती है।

आन्तरिक शुद्धि दो प्रकार की होती है— एक तो **शारीरिक आन्तरिक शुद्धि** और दूसरी **मानसिक आन्तरिक शुद्धि**। शरीर की बाह्य-शुद्धि तो स्नान आदि से हो जाती है, किन्तु शरीर की **आन्तरिक शुद्धि** बिना **षट्-कर्म** के कदापि सम्भव नहीं है। **षट्-कर्मों** में **१ नौलि, २ नेति, ३ धौति, ४ वस्ति, ५ कपाल-भाति** और **६ त्राटक** हैं। इनमें **नौलि** और **नेति** अभ्यास के लिए सर्व-सुलभ हैं। **धौति, वस्ति, कपाल-भाति** और **त्राटक** एक के बाद एक कठिन होते गए हैं और इनकी साधना बिना **योग्य गुरु** के कदापि सम्भव नहीं है।

* * *

६. नेति

नेति दो प्रकार की होती है— **१ जल-नेति** और **२ सूत्र-नेति**। पहले **जल-नेति** करनी चाहिए। प्रातः-काल **दन्त-धावन** के पश्चात् जो सांस चलती हो, उसी से चुल्लू में जल ले और दूसरी साँस बंद कर जल को नाक द्वारा खींचे। जल मुख में चला जाएगा। सिर के पिछले सारे हिस्से में, जहाँ मस्तिष्क का स्थान है, उस कर्म के प्रभाव से गुदगुदाहट और सनसनाहट या गिनगिनाहट पैदा होगी। अभ्यास बढ़ने पर आगे ऐसा नहीं होगा।

कुछ लोग नासिका के एक छिद्र से जल खींचकर दूसरे छिद्र से निकालने की क्रिया को **'जल-नेति'** कहते हैं। एक समय में आधा सेर से एक सेर तक जल एक नासा-पुट से चढ़ाकर दूसरे नासा-पुट से निकाला जा सकता है। एक समय एक तरफ से जल चढ़ाकर दूसरे

जल-नेति

समय दूसरी तरफ से चढ़ाए।

जल-नेति से **नेत्र-ज्योति** बलवान् होती है। यह स्कूल और कॉलिज के विद्यार्थियों के लिए भी हितकर है। तीक्ष्ण नेत्र-रोग, तीक्ष्ण अम्ल-पित्त और नए ज्वर में **जल-नेति** नहीं करनी चाहिए। अनेक मनुष्य नित्य सुबह नासा-पुट से जल पीते हैं। यह क्रिया हित-कर नहीं है। कारण, जो दोष नासिका में सञ्चित होंगे, वे आमाशय में चले जाएँगे। अतः **उषा-पान** तो मुख से ही करना चाहिए।

जल-नेति के अनन्तर **सूत्र** लेना चाहिए। महीन सूत की दस-पन्द्रह तार की एक हाथ लम्बी बिना बटी डोर, जिसका छः-सात इञ्च लम्बा एक प्रान्त बटकर क्रमशः पतला बना दिया गया हो, पिघले हुए मोम से चिकना बनाकर जल में भिगो लेना उचित है। फिर इस स्निग्ध भाग को भी इस रीति से थोड़ा मोड़कर जिस छिद्र से वायु चलती हो, उस छिद्र में लगाकर और नाक का दूसरा छेद अंगुली से बंद कर, खूब जोर से बार-बार पूरक करने से सूत का भाग मुख में आ जाता है। तब उसे तर्जनी और अंगुष्ठ से पकड़कर बाहर निकाल ले। पुनः **नेति** को धोकर दूसरे छिद्र में डालकर मुख में से निकाल ले। कुछ दिन के अभ्यास के बाद एक हाथ से सूत को मुख से खींचकर और दूसरे से नाकवाला प्रान्त पकड़कर धीरे-धीरे चालन करे। इस क्रिया को **'घर्षण-नेति'** कहते हैं। इसी प्रकार नाक के दूसरे रन्ध्र से भी, जब वायु उस रन्ध्र से चल रही हो, अभ्यास करे। इससे भीतर लगा हुआ कफ पृथक् होकर नेति के साथ बाहर आ जाता है। नाक के एक छिद्र से दूसरे छिद्र में भी सूत चलाया जाता है, यद्यपि कुछ लोग इसे दोष-युक्त मानकर इसकी उपेक्षा करते हैं। उसका क्रम यह है कि सूत नाक के एक छिद्र से पूरक द्वारा जब खींचा जाता है, तो रेचक मुख-द्वारा न कर

सूत्र-नेति

दूसरे रन्ध्र द्वारा करना चाहिए। इस प्रकार सूत एक छिद्र से दूसरे छिद्र में आ जाता है। इस क्रिया के करने में किसी प्रकार का भय नहीं है। सध जाने पर तीसरे दिन करना चाहिए। **'जल-नेति'** प्रति-दिन कर सकते हैं। **नेति** डालने में किसी-किसी को छींक आने लगती है, इसलिए एक-दो सेकण्ड श्वासोच्छ्वास की क्रिया को बन्द करके **नेति** डालनी चाहिए।

कपाल-शोधिनी चैव, दिव्य-दृष्टि-प्रदायिनी।
जत्रूर्ध्व-जातरोगौघं, नेतिराशु निहन्ति च।।

—हठ-योग-प्रदीपिका

'नेति' कपाल को शुद्ध करती है, दिव्य दृष्टि देती है। स्कन्ध, भुजा और सिर की संधि के ऊपर के सारे रोगों को **नेति** शीघ्र नष्ट करती है।

प्रायः देखा जाता है कि रबर की या दूसरे प्रकार की नलिका से शौकीन लोग नाक-द्वारा जल पिया करते हैं। इसकी महत्ता भी लोगों पर विदित है।

कफ से या **'नेति'** के कारण नासिका के ऊपर के भाग में दर्द हो, रक्त निकले, या जलन हो, तो गो-घृत दिन में दो बार सूँघे। हथेली में लेकर एक नासा-पुट बंदकर दूसरे नासा-पुट से सूँघे, तब घृत ऊपर चढ़ेगा। पाण्डु, कामला, अम्ल-पित्त, ऊर्ध्व रक्त-पित्त, पित्त-ज्वर, नासिका में दाह, नेत्र-दाह, नेत्राभिष्यन्द (नेत्रों की लाली), मस्तिष्क-दाह इत्यादि पित्त-प्रकोप-जन्य रोगों में से कोई रोग हो, तो इस **नेति** का उपयोग न करें। अधिक आवश्यकता हो, तो सम्हाल कर करें, परन्तु घर्षण-क्रिया न करे। पित्त-प्रकोप के समय **जल-नेति** का उपयोग हितकर है।

* * *

१०. नौली

अमन्दावर्त्त - वेगेन, तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा, नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते।।

—हठ-योग-प्रदीपिका

पद्मासन

नौली-कर्म की साधना के लिए **पद्मासन** सबसे उपयुक्त आसन है। **पद्मासन** में स्थित होकर दाहिना हाथ दाहिने घुटने पर और बाँयाँ हाथ बाँएँ घुटने पर रखना चाहिए। **मेरु-दण्ड** (पीठ की रीढ़) को कुछ आगे की ओर झुकाकर झटके के साथ भीतर की वायु को नाक के छिद्रों के मार्ग से बाहर निकाल देना चाहिए। इस तरह **प्राण-वायु** से कुछ क्षण के लिए पेट और फेफड़ा खाली हो जाएगा। इस बीच नाभि-स्थल के अगल-बगल के भाग को संकुचित कर (यह संकुचन नाभि-स्थल में स्थित वायु के द्वारा होता है) **मेरु-दण्ड** की तरफ खींचने का प्रयत्न करना चाहिए। यह संकुचन की प्रक्रिया कई दिनों के अभ्यास से परिपुष्ट होती है। इस तरह संकुचन की एक आवृत्ति को एक **उड्डियान** कहते हैं। एक श्वास में अर्थात् जब तक दुबारा श्वास न ली जाए, **पाँच उड्डियान** तक सम्भव हैं।

लगातार ५ दिनों तक एक श्वास में पाँच-ही-पाँच **उड्डियान** करने चाहिए। छठे दिन से पन्द्रहवें दिन तक एक श्वास में छः-छः **उड्डियान** और सोलहवें दिन से तीसवें दिन तक छः से बढ़ाकर सात-सात **उड्डियान** एक श्वास में किए जाने चाहिए अर्थात् पन्द्रह दिनों तक **साठ उड्डियान** और महीने के अन्त तक **सौ उड्डियान** तक किए जाने सम्भव हैं। इतना अभ्यास हो जाने पर नाभि-स्थल के अगल-बगल दो उभड़ती हुई नसों को **'नाले'** कहा जाता है। जब इनका उभाड़ स्पष्ट दीखने लगे, तब शारीरिक परिरम्भण द्वारा इन **नालों** को इधर-उधर घुमाना चाहिए। इन नालों में वायु जब स्तम्भित होने लगती है, तब उनमें उभाड़ आ जाता है और शारीरिक प्रक्रिया के कारण वे **नालें** इधर-उधर होने लगती हैं। **उड्डियान-प्रक्रिया** से नसों में हल्कापन आ जाता है और वायु के प्रवाह से वे फूलकर स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगती हैं। **नालों** के स्पष्ट दर्शन के पश्चात् **उड्डियान**-प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं रह जाती।

हठ-योग के **षट्-कर्मों** में **नौली**-कर्म सर्व-श्रेष्ठ है। **नौली**-कर्म के बिना **धौति** और **वस्ति**-कर्म की सिद्धि नहीं होती। जब तक नसें पीठ के अवयवों से ठीक प्रकार से पृथक् होकर स्पष्ट न हों, तब तक इनके स्पष्टीकरण का अभ्यास सावधानी-पूर्वक करना चाहिए। खाली पेट होने पर ही **नौली**-कर्म साध्य होता है। यह कर्म स्त्री और पुरुष दोनों के लिए साध्य है। पर दस वर्ष से कम आयु के बालक-बालिकाओं एवं गर्भवती स्त्रियों के लिए यह कर्म सर्वथा निषिद्ध है। साथ ही संग्रहणी, अतिसार-रोगी को भी यह कर्म नहीं करना चाहिए। जिसकी आंतों में क्षत हो, शरीर में शोथादि दोष हों, पित्त का अधिक प्रकोप हो, उसे भी **नौली**-कर्म नहीं करना चाहिए। उच्च रक्त-चाप व राज-यक्ष्मा के रोगी के लिए भी यह वर्जित है।

नौली-कर्म का अभ्यासी दीर्घ-जीवी होता है। उसका शरीर बाहर-भीतर से शुद्ध होता है। शरीर में वायु का स्तम्भन सुदृढ़ हो जाता है। शरीर में स्फूर्ति आ जाती है। भूख-प्यास की आस्था क्रमशः क्षीण हो जाती है। 'मन' स्थिर होने लगता है। दिव्यता का विकास हो जाता है। पेट में मल किञ्चित् मात्र भी नहीं रह पाता। अपान-वायु वश में हो जाती है। शरीर में ताप का अनुभव कभी नहीं होता। तिल्ली और वाय-गोला के रोग शान्त हो जाते हैं।

नौली-कर्म की साधना **मध्य-स्वर (सुषुम्णा)** में प्रारम्भ करनी चाहिए और इसी स्वर के माध्यम से आन्तरिक वायु का निष्कासन उपयुक्त होता है। कर्म आरम्भ हो जाने पर वायु का प्रवेग **चन्द्र-स्वर** या **सूर्य-स्वर** में प्रवाहित होता रहता है। **उड्डियान-साधना** में यदि **चन्द्र-स्वर** चलता रहे, तो अल्पाभ्यास से ही उसकी साधना सम्भव हो जाती है। **सूर्य-स्वर** से आन्तरिक वायु गरम होने के साथ-साथ प्रकम्पित भी हो जाती है और नालों का उभाड़ कुछ देर से होता है। **नौली-कर्म** का अभ्यास स्वस्थावस्था में ही प्रारम्भ करना चाहिए। यह अभ्यास एक मिनट से लेकर ५ मिनट तक करने का प्रयत्न करना चाहिए। वायु का स्तम्भन दृढ़ हो जाने पर **नौली-कर्म** भी सरल हो जाता है।

* * *

११. नाड़ी-शोधन

शरीर में रहनेवाली सब **नाड़ियाँ** मलादि से खराब रहती हैं और **नाड़ी का शोधन** न करने से वायु नहीं रुक सकती। अतः योग-साधन आरम्भ करने से पहले **नाड़ी-शोधन** करना चाहिए। **हठ-योग** में **षट्-कर्म** (छः काम) द्वारा **शरीर-शोधन** करने की व्यवस्था है। यथा—

धौतिर्वस्तिस्तथा नेति, नौलिकिस्त्राऽटकस्तथा।
कपाल-भातिश्चैतानि, षट्-कर्माणि समाचरेत्॥

—गोरक्ष-संहिता

१ धौति, २ वस्ति, ३ नेति, ४ नौलिकी, ५ त्राटक और ६ कपाल-भाति— इन छः तरह की बाह्य (ऊपरी) क्रियाओं से **शरीर-शोधन** करने की व्यवस्था है, लेकिन ये सब गृह-त्यागी साधु-संन्यासी से ही बन पड़ती हैं, सर्व-साधारण के लिए ये बहुत ही कठिन हैं। विशेषतः इनके उपयुक्त रूप से अनुष्ठित न होने पर नाना प्रकार के दुःसाध्य (कठिनाई से दूर होनेवाले) रोगों की उत्पत्ति होने की सम्भावना होती है। परम-योगी शङ्कराचार्य ने भीतरी प्रयोग से **नाड़ी-शोधन** की जो व्यवस्था बताई है, वह विधि यहाँ दी जा रही है। यह सबके लिए सुलभ और सुगम है।

इसके लिए पहले **आसन का अभ्यास** करना पड़ता है, **आसन में सिद्धि** लाभ हो जाने पर **नाड़ी-शोधन** प्रारम्भ करना चाहिए।

स्थिर-भाव से **सुखासन** में बैठकर, सीधे हाथ के अँगूठे से दाहिने नथुने को कुछ दबाकर बाएँ नथुने से जहाँ तक सम्भव हो सके, वायु को खींचे एवं जरा-सी देर भी न ठहर-कर अनामिका और कनिष्ठिका अँगुली से बाँएँ नथुने को बन्द कर दाहिने नथुने से वायु का **रेचन** करे यानी वायु को निकाल दे, फिर दाहिने नथुने से वायु खींचकर यथा-शक्ति बाँएँ नथुने से निकाल दे लेकिन खींचने

नाड़ी-शोधन

का काम पूरा होते ही उसी वक्त वायु को निकाल देना चाहिए, जरा देर भी न रोकना चाहिए। पहले अभ्यास करते समय उपर्युक्त क्रिया एक बार हिसाब से तीन बार करनी चाहिए। इसके बाद तीन बार अच्छी तरह से अभ्यास हो जाने पर पाँच बार, फिर सात बार इस प्रकार बढ़ाना चाहिए।

सारे दिन-रात के बीच में इसी तरह एक बार उषःकाल में, एक बार दोपहर में, एक बार सन्ध्या को और एक बार अर्द्ध-रात्रि के समय कुल चार बार करना चाहिए। नित्य नियम से चार बार यत्न के साथ अभ्यास कर सकने पर एक महीने के भीतर ही सिद्धि मिलेगी, किसी-किसी को डेढ़ या दो महीने भी लग सकते हैं।

नाड़ी-शोधन में सिद्धि-लाभ हो जाने से देह बहुत हल्की मालूम पड़ेगी, आलस्य-सुस्ती आदि सब दूर हो जाएँगे। कभी-कभी आनन्द से मन उभर उठेगा एवं समय-समय पर सुगन्धि से नाक भर जाएगी। ये सब लक्षण प्रकट होने पर समझना चाहिए कि **नाड़ी-शोधन** में सिद्धि मिल गई है।

* * *

१२. प्राण और प्राणायाम

'प्राण' परमात्मा की शक्ति का द्योतक है। **'कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषद्'** में **'प्राणो ब्रह्म'** कहकर **प्राण की महिमा** बतलायी गयी है। **'मुण्डकोपनिषद्'** (२।१।३) में कहा गया है कि—

एतस्माज्जायते प्राणो, मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
एवं वायुर्ज्योतिरापः, पृथ्वी विश्वस्य धारिणी॥

अर्थात् परमात्मा से प्राण, मन, समस्त इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, ज्योति, जल और सबको धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है। यही बात **'प्रश्नोपनिषद्'** (६।४) में बतलाई गई है। प्राण का क्रिया-योग **प्राणायाम** है, जो **'मनु-स्मृति'** (२।२६) में **'प्राणायामः परं तपः'** कहा गया है।

जिस प्रकार बिजली से विविध यन्त्रों का सञ्चालन होता है,

वैसे ही **प्राण**-द्वारा समस्त प्राणियों के अङ्ग गतिमान् होते हैं। **'तैत्तिरीय उपनिषद्'** (२।२।३) बतलाता है—

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति, मनुष्याः पशवश्च ये।
प्राणो वि भूतानामायुः, तस्मात् सर्वायुषमुच्यते॥

अर्थात् प्राण के बल से देवता, मनुष्य और पशु जीते हैं, प्राण सब भूतों की आयु है, अतएव वह **'सर्वायुष'** कहलाता है। **'छान्दोग्योपनिषद्'** (५।१।६-१२) में **प्राण की महिमा** के सम्बन्ध में एक रोचक आख्यान है। एक बार **इन्द्रियों** में और **प्राण** में यह विवाद खड़ा हुआ कि उनमें कौन-श्रेष्ठ है? न्याय कराने के लिए सब **प्रजापति** के पास पहुँचे! उन्होंने उत्तर दिया कि 'तुममें से जिसके निकल जाने से शरीर मृत-वत् हो जाए, वही श्रेष्ठ है।' यह सुनकर **वाणी** शरीर से बाहर निकली, फिर **चक्षु** और उसके बाद **श्रोत्र**। इस प्रकार एक-एक करके **इन्द्रियों** के निकलने पर भी शरीर जीवित बना रहा। अन्त में जब **प्राण** निकलने लगा, तब सब विकल हो गए और कहने लगे, 'तुम्हीं हम सबमें श्रेष्ठ हो, तुम बाहर मत जाओ।' जिस प्रकार बिजली के चले जाने पर घर में रेडियो और पंखे का चलना बन्द हो जाता है, वैसे ही **प्राण-शक्ति** से रहित होने पर सभी **इन्द्रियों के व्यापार** लुप्त हो जाते हैं।

प्राण— 'पञ्च वायवः' पाँच वायुओं द्वारा शरीर में प्रकट होता है। **वे 'प्राणापान-व्यानोदान-समानाः'** अर्थात् **१ प्राण, २ अपान, ३ व्यान, ४ उदान** और **५ समान** हैं। इनके अधिष्ठान इस प्रकार हैं—

हृदि प्राणो, गुदेऽपानः, समानो नाभि-संस्थितः।
उदानः कण्ठ - देशस्थो, व्यानः सर्व-शरीरगः॥

अर्थात् हृदय में **प्राण,** गुह्याङ्ग में **अपान,** नाभि में **समान,** कण्ठ में **उदान** और सारे शरीर में **व्यान** व्याप्त है। इन पाँचों के द्वारा विलक्षण देह-यन्त्र का सञ्चालन होता है। **'प्राण'** - वायु का कार्य श्वास भीतर ले जाना और बाहर निकालना है, भोजन को पचाना, अन्न को मल, पानी को मूत्र और रसादि को वीर्य में

परिणत करना है। **'अपान'** गुदा से मल, उपस्थ से मूत्र और अण्ड-कोष से वीर्य बाहर निकालता है। **'समान'** रसादि का वितरण सब अङ्गों में करता है। **'उदान'** द्वारा जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर से निकलकर शरीरान्तर या लोकान्तर में जाता है। **'प्रश्नोपनिषद्'** (३।७) में कहा गया है कि **'उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति।'**

योग-दर्शन के विभूति-पाद के सूत्र ३९ में यह कथन है कि **'उदान-जयाज्जल-पङ्क-कण्टकादिष्वसङ्गः'** अर्थात् **उदान** के जीतने से योगी का शरीर इतना हल्का हो जाता है कि वह पानी पर चल सकता है और कीचड़-काँटों का असर उसके पैरों पर नहीं होता है तथा प्राणों का निकलना उसके वश में हो जाता है। **व्यास-भाष्य** में **उदान** की व्युत्पत्ति **'उन्नयनादुदानः'** की गई है।

जिस **प्राण** की इतनी महान् शक्ति है, उसका उपयोग करने की प्रक्रिया **प्राणायाम** है। उसके तीन प्रकार हैं— (१) **पूरक** : नाक के छिद्रों द्वारा श्वास को भीतर ले जाना, (२) **रेचक** : श्वास को बाहर निकालना और (३) **कुम्भक** : श्वास को भीतर या बाहर रोक लेना। पूरक-सहित कुम्भक **'आभ्यन्तर'** और रेचक-सहित **'बाह्य'** कहलाता है। **प्राणायाम** को **प्रणव** की उपासना भी माना गया है। **'योगि-याज्ञवल्क्य'** (६।३) में कहा गया है—

वर्ण-त्रयात्मका ह्येते, रेचक-पूरक-कुम्भकाः।
स एव प्रणवः प्रोक्तः, प्राणायामश्च तन्मयः॥

अर्थात् **रेचक, पूरक** और **कुम्भक**— इन तीनों में तीन-तीन वर्ण हैं, जिस प्रकार **प्रणव** में **'अ-उ-म'** तीन वर्ण हैं। अतएव **प्राणायाम प्रणव-रूप** है और इसी भावना से उसकी उपासना करनी चाहिए।

'वाह्य कुम्भक' और **'आभ्यन्तर कुम्भक'** के अतिरिक्त **प्राणायाम** का तीसरा प्रकार **'केवल कुम्भक'** है, जिसमें श्वास-प्रश्वास की गति का निरोध होता है अर्थात् **प्राण-वायु** को जहाँ-का-तहाँ बिना **पूरक-रेचक** किए एकदम रोक दिया जाता है।

चौथे प्रकार का **प्राणायाम** बिना **कुम्भक** के केवल **पूरक** और **रेचक** द्वारा किया जाता है। इसमें श्वास-प्रश्वास की गति का

अल्प-मात्रा में निरोध स्वतः ही बन जाता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि केवल श्वास लेना और निकालना ही **पूरक** और **रेचक** नहीं कहलाते, किन्तु **पूरक** में **प्राण**-वायु को प्रयास से गुदा-स्थान तक ले जाकर **अपान** से मिलाया जाता है और **रेचक** में **अपान** ऊपर खिंचकर **प्राण** से जा मिलता है तथा **कुम्भक** में **प्राण** और **अपान**— दोनों समान-वायु के स्थान **नाभि-मण्डल** में रोक दिए जाते हैं। **प्राणायाम**— **'योग-यज्ञ'** है, जिसका वर्णन **गीता** में इस प्रकार है—

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापान-गती रुद्ध्वा, प्राणायाम-परायणाः॥

—श्रीमद्-भगवद्-गीता, ४।२९

अर्थात् जैसे कतिपय योगी **अपान में प्राण** को होमते हैं, वैसे ही अन्य योगी-जन **प्राण में अपान** का हवन करते हैं और कई योगी **प्राण और अपान की गति का निग्रह** कर **प्राणायाम** में लगते हैं।

वस्तुतः **प्राण** और **अपान** वायु के संयोग को **प्राणायाम** कहते हैं, जिसमें **रेचक, पूरक** और **कुम्भक**— ये तीन क्रियाएँ की जाती हैं। यथा—

प्राणापान-समायोगः, प्राणायाम इतीरितः।
प्राणायाम इति प्रोक्तो, रेचक-पूरक-कुम्भकैः॥

—योगी याज्ञवल्क्य, ६।२

स्वरोदय का प्रमुख अङ्ग **'प्राणायाम'** है। **प्राणायाम** के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में विशेष साहित्य की उपलब्धि होती है। वास्तव में **प्राणायाम** मानव-जीवन का बड़ा ही उपयोगी विषय है। इससे लौकिक और पारलौकिक दोनों साधनों की उपलब्धि होती है। जिस प्रकार **प्राणायाम** योगाभ्यासियों के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार गृहस्थों के लिए भी उपयोगी है। **प्राणायाम** ब्रह्म-प्राप्ति का श्रेष्ठ किन्तु सुलभ साधन है। इससे जीवन की उलझी हुई गुत्थियाँ सहज ही सुलझ जाती हैं। आत्मोन्नति का श्रेष्ठ साधन **प्राणायाम** ही है। **प्राणायाम** का आश्रय लेकर योगाभ्यासी इच्छानुसार देहोत्सर्ग

करके जाता है। समाधिस्थ होकर **ब्रह्म-मय** हो जाता है। **ब्रह्म-नाड़ी** का स्फुरण **प्राणायाम** से ही होता है।

योग-शक्ति से योगी मृत्यु का समय निकट जानकर **प्राणायाम** में तत्पर हो जाता है और सहज ही मृत्यु के क्षण टल जाते हैं। हृदय में स्थित **प्राण**-वायु जठराग्नि को उद्दीप्त करनेवाली है। ज्ञान-विज्ञान और उत्साह— सभी की प्रवृत्ति वायु से ही होती है। शरीर के लिए ही नहीं, प्रत्युत आध्यात्मिक-शक्ति के विकास के लिए **प्राणायाम** श्रेष्ठ साधन है। आन्तरिक शरीर के अवयवों की पुष्टि **प्राणायाम** से होती है। ज्ञान-तन्तु, मस्तिष्क इत्यादि शारीरिक दुर्बलता न होने पर भी **प्राण**-वायु की कमी के कारण क्षीण हो जाते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व **योग** के **षट्-कर्मों की सिद्धि** (देखें **नाड़ी-शोधन**) आवश्यक मानी गई है। पर इन **षट्-कर्मों** के बिना भी **प्राणायाम** सर्वथा सम्भव है, यद्यपि अभ्यास में विलम्ब अवश्य होता है। **'गीता'** में भगवान् ने कहा है—

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।

—अध्याय ७।१० का उत्तरार्द्ध

अर्थात् जो अच्छी तरह मन-द्वारा दोनों भौंहों के **बीच** प्राण-वायु की रक्षा कर सकता है, वही उस परम ज्योति से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त करने में सफल है।

प्राणायाम के समय **प्राण**-वायु को भौंहों के मध्य में स्थापित कर साधक को अपनी दृष्टि उसी पर केन्द्रित करनी चाहिए। तभी मन शान्त होता है और **परम पुरुष की प्राप्ति** होती है। **'शिव-संहिता'** में कहा गया है कि **प्राणायाम की साधना** के समय साधक के शरीर में पहले स्वेद-प्रसव होता है और कुछ दिन लगातार अभ्यास करते रहने से शरीर में कम्पन होने लगता है। और तब आगे चल कर मेढक की चाल की गति उत्पन्न हो जाती है। अधिक काल तक अभ्यास करने से वायु सिद्ध हो जाती है और इच्छानुसार त्वरित् गमन भी सम्भव हो सकता है, साथ ही अल्प-निद्रा, अल्प-मल-मूत्रादि होता है। **योग-सिद्धि** के लिए

प्राणायाम उत्तम साधन है। योग-सिद्ध महात्मा अष्ट-सिद्धियों को सहज में ही प्राप्त कर लेता है।

प्राण-वायु के सिद्ध हो जाने पर बाह्य सिद्धियाँ भी अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। सूक्ष्म वस्तु-दर्शन के अतिरिक्त दूर-दृष्टि, दूर-श्रवण, पर-काय-प्रवेश, पदार्थों को अदृश्य करना, स्वयं अदृश्य हो जाना आदि-आदि की उपलब्धि हो जाती है। काक-चंचु द्वारा वायु-पान करने से भी यही शक्ति प्राप्त हो जाती है। वायु सिद्ध हो जाने पर **आज्ञा-चक्र का जागरण** होता है, उस समय अभ्यासार्थी को उकताहट-सी प्रतीत होती है, शरीर में चींटी रेंगने-जैसी गति होती है, कभी किसी के झपटने का आभास होता है और कभी आँखों के सामने विभिन्न प्रकार के प्रकाश का आभास होता है। ये सब **योग-सिद्धि** की बाधाएँ हैं। इनसे साधक को विचलित न होना चाहिए।

प्राणायाम के माध्यम से जब **आज्ञा-चक्र का जागरण** हो जाता है, उस समय मस्तिष्क में विचारों की प्रेरणा का प्रभाव अन्य व्यक्ति के मस्तिष्क पर भी पड़ने लगता है और इस तरह विचार-प्रेरणा (टेलीपेथी) की शक्ति जाग्रत हो उठती है। **प्राण-वायु की साधना** जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। **प्राणायाम** का अभ्यास परिपुष्ट हो जाने से शरीर में पसीना आने लगता है। इस पसीने को यथा-स्थान मालिश करने पर शरीर की जड़ता और स्थूलता नष्ट हो जाती है, साथ ही श्लेष्मा आदि का भी शमन होता है।

प्राणायाम के लिए **पद्मासन** ही सबसे उपयुक्त आसन है। **प्राणायाम** का अभ्यास प्रारम्भ करने के पहले **मूल-बन्ध, उड्डियान-बन्ध** और **जालन्धर-बन्धों** का जानना अत्यावश्यक है। इन बन्धों के माध्यम से **प्राणायाम का अभ्यास** परिपुष्ट होता है।

मूल-बन्ध— मल-मूत्रेन्द्रिय के मध्य में जो चार अंगुल का स्थान होता है, उसे बाँएँ पाँव की एड़ी से दबाकर गुदा को आकुंचित करना ही **मूल-बन्ध** है।

उड्डियान-बन्ध— रेचक की अवस्था में पेट को अन्दर की ओर

श्वास के बल से खींचकर पीठ के आन्तरिक भाग से सटाने की प्रक्रिया को **उड्डियान-बन्ध** कहा जाता है।

जालन्धर-बन्ध— कुम्भक की अवस्था में कण्ठ-भाग को संकुचित कर कण्ठ के मूल-भाग में ठोढ़ी लगाने की विधि को **जालन्धर-बन्ध** कहते हैं।

प्राणायाम के तीन भाग हैं— **१ पूरक, २ कुम्भक** और **३ रेचक**। **पूरक** में जितना समय लगता है, उसका चौगुना **कुम्भक** में और दुगुना समय **रेचक** में लगाना चाहिए। **पूरक** के समय मूल-बन्ध, **कुम्भक** में जालन्धर-बन्ध और **रेचक** में उड्डियान-बन्ध का प्रयोग होता है। बाँएँ नासिका-छिद्र से श्वास खींचने की प्रगति को **पूरक,** उसे हृदय में स्थित करने की अवस्था को **कुम्भक** और दाएँ नासिका-छिद्र से उसे बाहर निकालने को **रेचक** कहते हैं। बाँएँ नासिका-छिद्र से श्वास खींचने से लेकर दाँयी नासिका के छिद्र से निकालने तक की अवस्था **प्राणायाम की प्रथम आवृति** कही जाती है, दाँएँ नासिका-छिद्र से श्वास खींचकर हृदय में स्थित करने के बाद बाँएँ नासिका-छिद्र से श्वास निकालने की प्रक्रिया को **प्राणायाम की दूसरी आवृति** कहा जाता है।

प्राणायाम के आठ भेदों में **अनुलोम-विलोम प्राणायाम** और **सूर्य-भेदन प्राणायाम** ही सुलभ होते हैं। **अनुलोम-विलोम प्राणायाम** में दाहिने नासाग्र-छिद्र को दबाकर बाँएँ नासाग्र-छिद्र से थोड़ी-थोड़ी वायु को बाहर निकाला जाता है और उसके बाद दाहिने नासाग्र-छिद्र से क्रमशः वायु-ग्रहण कर दोनों नासाग्र-छिद्रों को बन्द कर लिया जाता है, यही **कुम्भक** की अवस्था होती है। **कुम्भक** की अवस्था पूर्ण हो जाने पर बाँएँ नासाग्र-छिद्र से वही अन्दर स्थित वायु धीरे-धीरे बाहर निकाली जाती है, यही **प्राणायाम** की **रेचक** अवस्था होती है। साधारणतः **प्राणायाम** की यही सरल साधना है।

सूर्य-भेदन प्राणायाम में नासिका-छिद्र को दाहिने हाथ की अनामिका और कनिष्ठिका से दबाकर दाहिने नासिका-छिद्र के द्वारा जोर से वायु को ग्रहण किया जाता है और तब उसे हृदय में स्थित कर दोनों नासिका-छिद्र और मुँह बन्द कर लिए जाते

हैं। **कुम्भक** की अवस्था पूरी हो जाने पर वही वायु बाँएँ नासिका-छिद्र से धीरे-धीरे बाहर निकाल दी जाती है।

सिद्धान्ततः **प्राणायाम** के दो भेद— **'अगर्भ'** और **'सगर्भ'** होते हैं। **जप** और बिना **ध्यान** के जो **प्राणायाम** किया जाता है, उसे **अगर्भ प्राणायाम** कहा जाता है। **जप** और **ध्यान** के साथ किया जानेवाला **प्राणायाम— सगर्भ प्राणायाम** होता है। **सगर्भ प्राणायाम** फल-प्रद और जीवन के लिए सार्थक होता है। योगाभ्यासी इसी **प्राणायाम** का आश्रय लेते है। **अगर्भ प्राणायाम** नियम-पालन के लिए किन्तु फल-रहित होता है। **अगर्भ प्राणायाम** से चित्त में स्थिरता नहीं आती और योगाभ्यास भी परिपक्व नहीं होता। **जप** में **इष्ट-देव का नाम** ही स्मरण किया जाता है अथवा **गायत्री-मन्त्र** की आवृति अन्दर-ही-अन्दर की जाती है। साधारणतया दो अक्षरों (**राम** या **शिव**) का नाम **पूरक** की अवस्था में सोलह बार जपा जाता है। **कुम्भक** की अवस्था में अड़तालिस से लेकर चौंसठ बार जपा जाना चाहिए। इससे अधिक भी **नाम-जप** साध्य है। **रेचक** की अवस्था में **पूरक** से दूना जप किया जाना चाहिए। **जप** के साथ **इष्ट-देव का ध्यान** भी आवश्यक है। **ध्यान** की अवस्था नासिकाग्र या दोनों भौहों के बीच स्थित दृष्टि अथवा आँख बन्द करने की अवस्था में अन्तर्दृष्टि से है। इससे **चित्त एकाग्र** होता है और **इष्ट-देव पर ध्यान** जमता है। यह अभ्यास जब कुछ दिनों में परिपक्वावस्था को प्राप्त हो जाता है, तब **ध्यान में इष्ट-देव का दर्शन** भी होने लगता है।

अवस्था के अनुसार भी **प्राणायाम** के चार भेद होते हैं— (१) **कनिष्ठ प्राणायाम** : साधारण अभ्यास के आगे पाँच मिनट से अधिक वायु-स्तम्भन की दशा को कहते हैं। (२) **मध्य-प्राणायाम** : कनिष्ठ प्राणायाम अधिक सुदृढ़ होने पर दस मिनट से अधिक वायु-स्तम्भन की दशा को कहते हैं। (३) **उत्तम प्राणायाम** : मध्यम प्राणायाम की अग्रिम कोटि ही उत्तम प्राणायाम है और वायु - स्तम्भन की अवधि पन्द्रह मिनट तक हो जाती है। (४) **उत्तमोत्तम प्राणायाम** : इसमें प्राण-वायु का स्तम्भन अत्यन्त सुदृढ़ हो जाता है। शरीर में स्वेद और कम्पन का वेग आने लगता है।

आनन्दातिरेक में रोमांच, अश्रु-पात और विभ्रम की अवस्थाएँ उद्‌भूत होने लगती हैं।

प्रत्येक प्रकार के **प्राणायाम** में प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ उद्‌घातों का संचरण होता है। नाभि-देश से वायु प्रेरित होकर ब्रह्माण्ड में जब टक्कर खाती है, तब एक उद्‌घात होता है। एक उद्‌घात में **कनिष्ठ प्राणायाम** का समय लगता है। **उत्तमोत्तम प्राणायाम** में उद्‌घात की संख्या चार अवश्य निरूपित की गई है किन्तु इसमें चार से अधिक भी उद्‌घात होते रहते हैं। आगे चलकर **प्राणायाम** के द्वारा ही **प्रत्याहार, धारणा, ध्यान** और **समाधि** की अवस्थाएँ परिपुष्ट होती हैं।

प्राणायाम के माध्यम से **प्राण-वायु** पर विजय प्राप्त की जा सकती है, जिससे मल-मूत्र और कफ की मात्रा में कमी आ जाती है। अधिक भोजन पचा डालने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। श्वास का प्रवाह विलम्बित हो जाता है। द्रुत-गमन की शक्ति आ जाती है। यहाँ तक कि अभ्यासी **अलौकिक ब्रह्म-शक्ति** से सम्पन्न हो जाता है। इस तरह **प्राणायाम** जीवन का महान् उपयोगी विषय है, जिसकी साधना **स्वरोदय** के माध्यम से ही सम्भव है।

प्राकृतिक प्राणायाम— इसे सीखने के लिए आपको कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। इसकी शिक्षा-दीक्षा आप प्रत्येक सोए हुए प्राणी से ग्रहण कर सकते हैं और यदि आपने इसे समझ लिया, तो बस इसे अपने शरीर के अन्दर विकसित कर आप अपूर्व आनन्द एवं शक्ति का अनुभव कर सकते हैं।

किसी भी सोए प्राणी को आपने देखा होगा और पाया होगा कि उस सोए प्राणी का सम्पूर्ण शरीर चेतना-विहीन एवं शिथिल हो जाता है। जब वह गाढ़ी निद्रा में रहता है, तब प्रकृति वायु-रूप में शरीर के भीतर प्रवेश कर इसके भीतर की सफाई एवं नष्ट-प्राय तन्तुओं को ठीक करती और स्वस्थ रखती है। प्रकृति का यह वरद-हस्त उन्हीं प्राणियों को प्राप्त होता है, जिन्हें गाढ़ी निद्रा का वरदान मिला हो। बहुत कम प्राणियों को ऐसी **सम्पूर्ण निद्रा** का आनन्द मिलता है। अधिकांश लोग सांसारिक बन्धन के कारण माया की प्रवञ्चना में पड़कर इसके उपयोग

से या तो पूर्ण-रूप से वञ्चित हो जाते हैं, अथवा **गाढ़ी निद्रा** का बहुत ही कम— नगण्य-सा उपयोग कर पाते हैं और इसका फल आज संसार के सामने है। लोग **चिरायु** किसे कहते हैं, यह भूलते जा रहे हैं, किन्तु प्राचीन भारत इसका प्रमाण है। यहाँ योग-साधकों ने **प्राणायाम का आश्रय** लेकर **चिरायु** होकर संसार में **भारत का गौरव** प्रतिष्ठित किया था।

आइए, आज मैं आपको एक ऐसे **प्राणायाम** से अवगत कराता हूँ, जो करने में एकदम सहज है, किन्तु जिसमें अलौकिक आनन्द का समावेश है।

आप यदि किसी **गाढ़ी निद्रा** में सोए प्राणी को देखें, तो अनुभव करेंगे कि वायु का प्रवेश होने पर उदर विकसित होता है और फिर जब वायु बाहर निकलती है, तो उदर का संकोचन होता है। यह विकसित एवं संकुचित क्रिया का होना ही **प्राकृतिक प्राणायाम** है एवं इसी **प्राकृतिक प्राणायाम** पर पूरे विश्व का **जीवन-चक्र** चल रहा है। इसके विपरित होना ही **जीवन-चक्र** का टूट जाना है, जिसे लोग 'मृत्यु' के नाम से जानते हैं। अतः इस **प्राकृतिक प्राणायाम** को पूर्णतया समझ लेने का अर्थ है कि आप **प्राणायाम की कुञ्जी** पा गए हैं।

प्राणायाम में **पूरक** करते समय उदरादि को विकास देकर **कुम्भक** में शान्त बनाना और **रेचक** में संकुचित करना चाहिए। यही **जीवन को सुरक्षित रखने का साधन** है। अन्यथा इसके विपरित करने से वही होगा, जो जल के प्रवाह को विपरीत रोकने से होता है, किन्तु जब कोई इञ्जीनियर जल को विपरीत चढ़ाना चाहता है, तब वह प्रथम एक बड़ा-सा तालाब या झील बनाकर उसमें जल के वेग को शांत करता है, फिर यन्त्र के द्वारा उस जल को ऊपर चढ़ाना आरम्भ करता है। ठीक इसी तरह साधक को अपने उदर को तालाब बनाकर प्रथम उसमें **प्राण-वायु** के वेग को शान्त कर, फिर **सुषुम्णा** के यन्त्र में शनैः-शनैः ऊपर चढ़ाने का अभ्यास करना चाहिए। उदर में वायु को पूर्ण किए बिना **सुषुम्णा का खुलना** असम्भव है और **सुषुम्णा** के खुले बिना वायु को हठ-पूर्वक रोकना अपनी मृत्यु को आप ही निमन्त्रण देना है।

जिन्हें इसका पूर्ण ज्ञान नहीं, ऐसे ही साधकों ने **प्राणायाम** को कलङ्कित किया है। इन्ही दुराग्रही साधकों ने अपने अनुभव (जो अधूरा है) का जनता में प्रचार कर जनता को **योग** से भय-भीत एवं विमुख कर दिया है।

शुद्ध पवित्र होम से सुगन्धित किसी खुले एकान्त कमरे में जाकर सम-सूत्र में खड़े हों। नासाग्र पर दृष्टि जमाकर जितनी लम्बी आपकी बाँह हो, उतनी ही दूरी पर अपने सामने की दीवार के आगे पाँव जमाकर, अपने दोनों हाथों की हथेलियाँ उस पर रखकर, दीवार को पीछे की ओर दबाते हुए शरीर के स्नायुओं को तनतनाइए और दीर्घ एवं उच्च स्वर से 'ॐ' का उच्चारण किजिए। उच्चारण के साथ पेट को **मेरु-दण्ड** की ओर खींचते जाइए और छाती को सामने की ओर फैलाते जाइए। इस तरह जैसे-जैसे 'ॐ' का उच्चारण दीर्घ एवं उच्च होता जाए, वैसे-वैसे ही उदर अन्दर और छाती बाहर आती जाए। इस तरह 'ॐ' के उच्चारण को आप जितना ही दीर्घ बनाते जाएँगे, उतना ही आपका **प्राण** दीर्घ होने लगेगा और जितनी तनतनाहट आपके स्नायुओं में उत्पन्न होगी, उतनी ही आपके स्नायुओं में 'ॐ' की ध्वनि गुंजरित होने लगेगी, जिससे आपके मन एवं इन्द्रियों को **अन्तर्लोक की प्राप्ति** होगी। आप इस उच्चारण को तीन मिनट का दीर्घ बनाकर देखें, तो यह आपको किस आनन्द-लोक की सैर कराता है!

इस **प्राणायाम** से प्राण दीर्घ, बलिष्ठ, शक्तिशाली होता है। दिन-प्रति-दिन **प्राण की स्थिति** आनन्द की भूमि को पाने लगती है। मेरु-दण्ड, जो जीवन का मूल केन्द्र है, वह शुद्ध, बलिष्ठ और सीधा हो जाता है। **सूर्य-चक्र (मणिपूर चक्र)** का विकास होकर दिव्य जीवन एवं दिव्य आकर्षण की प्राप्ति होने लगती है। इससे आपके शरीर के स्नायु शुद्ध-पवित्र होकर आरोग्यता प्राप्त करेंगे। आपके रक्त में नयी कान्ति उत्पन्न होने लगेगी। कहाँ तक कहें, आपके उच्चारण बंद करने पर भी आपके स्नायुओं में 'ॐ' का नादानुनाद होता रहेगा, जिसकी मधुरता एवं रसिकता से मन एवं इन्द्रियों को अन्तर्मुखता की प्राप्ति होने लगेगी, जिससे आपको निर्विकल्प

भूमि की प्राप्ति होगी। इस अभ्यास के कुछ ही दिन पूर्ण होने से आपको **'केवल कुम्भक'** का **नादानुसन्धान** होने लगेगा, जो **योग-शास्त्र** का मुख्य साधन है।

प्राणायाम से लाभ— (१) दीर्घायु - प्राप्ति, (२) दिव्य शक्ति - प्राप्ति, (३) विकारों पर विजय, (४) अतुल मनो-बल, (५) शारीरिक सामर्थ्य, (६) स्वास्थ्य-संरक्षण, (७) रोग-निवारण।

* * *

१३. वायु और वायु के गुण

भौतिक देह में जितने प्रकार के शारीरिक कार्य होते हैं, वे सभी वायु की सहायता से सम्पन्न होते हैं। चैतन्य की सहायता से इस जड़ देह में वायु ही जीव-रूप से दैहिक कार्य सम्पन्न कर रहा है। देह केवल यन्त्र मात्र है, वायु उसके चलाने का उपकरण है। अतः वायु को वश में करने के उपाय का नाम ही **योग-साधन** है। वायु के वश में हो जाने पर ही मन वशीभूत होता है, मन के वश में आ जाने से **इन्द्रिय-जय** हो सकती है और **इन्द्रिय-जय** होने पर सिद्धि मिलने में कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। **वायु-जय** करके **चैतन्य-स्वरूप पुरुष** के साथ साक्षात् हो जाए, इसी के लिए योगि-गण **योग-साधन** करते हैं। इसलिए **वायु** की बात जान लेना बहुत ही आवश्यक है।

मानव-देह के अन्दर हृदय-देश में **'अनाहत'**-नामक एक **रक्त-वर्ण पद्म** है, उसके बीच में त्रिकोण-पीठ **'वायु-बीज' (यं)** है। यह वायु-बीज ही **'प्राण'** कहा जाता है। **प्राण-वायु** शरीर के नाना स्थानों में अवस्थान कर दैहिक कार्य-भेद से दश नामों से पुकारा जाता है—

प्राणोऽपान समानश्चोदान-व्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो, देवदत्तो धनञ्जयः॥

—गोरक्ष-संहिता, २६

१ प्राण, २ अपान, ३, समान, ४ उदान, ५ व्यान, ६ नाग, ७ कूर्म्म, ८ कृकर, ९ देवदत्त और १० धनञ्जय— इन्हीं

दश-वायुओं में **प्राणादि पञ्च-वायु अन्तःस्थ** एवं **नागादि पञ्च-वायु बहिःस्थ** हैं। देह में **अन्तःस्थ पञ्च-प्राण** के अलग-अलग स्थान निर्दिष्ट हैं। यथा—

हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुह्य-मण्डले,
समानो नाभि-देशे तु, उदानः कण्ठ-मध्यगः।
व्यानो व्यापी शरीरे तु, प्रधानाः पञ्च-वायवः।।

—गोरक्ष-संहिता, ३०

हृदय-देश में **प्राण-वायु**, गुह्य देश में **अपान-वायु**, नाभि-मण्डल में **समान-वायु**, कण्ठ-देश में **उदान-वायु** और सारे शरीर में **व्यान-वायु** व्याप्त होकर अवस्थान कर रहा है। यद्यपि ये अलग-अलग नाम हैं, तथापि एक **प्राण-वायु** ही इनमें मूल और प्रधान है।

प्राणस्य वृत्ति-भेदेन, नामानि विविधानि च।

—शिव-संहिता, ३०

वृत्ति-भेद से **प्राण-वायु** के विविध नाम हुए हैं।

प्राणादि **अन्तःस्थ पञ्च-वायु** और नागादि **बहिःस्थ पञ्च-वायु** अपने-अपने स्थान में अवस्थान करके, शारीरिक समस्त कार्य सम्पन्न कर रहे हैं। यथा—

निःश्वासोच्छ्वास-रूपेण, प्राण-कर्म समीरितम्।
अपान-वायोः कर्मेतद्-विण्मूत्रादि-विसर्जनम्।।
हानोपादान - चेष्टादिर्व्यान - कर्मेति चेष्यते।
उदान - कर्म तच्चोक्तं, देहस्योन्नयनादि यत्।।
पोषणादि समानस्य, शरीरे कर्म कीर्तितं।
उद्गारादिर्गुणो यस्तु, नाग-कर्म समीरितम्।।
निमीलनादि कूर्म्मस्य, क्षुत्-तृष्णे कृकरस्य च।
देवदत्तस्य विप्रेन्द्र, तन्द्रा-कर्मेति कीर्तितम्।।
धनञ्जयस्य शोषादि, सर्व-कर्म प्रकीर्त्तितम्।।

—योगी याज्ञवल्क्य, ४।६६-६९

नाक से श्वास-प्रश्वास लेना, पेट में गए अन्न-जल को पचाना व अलग करना, नाभि-स्थल में अन्न को विष्ठा-रूप में, जल को स्वेद और मूत्र-रूप में एवं रसादि को वीर्य-रूप में बनाना **'प्राण'**-वायु का कार्य है।

पेट में अन्नादि पचाने के लिए अग्नि प्रज्वालन करना, गुह्य में से मल निकालना, उपस्थ में से मूत्र निकालना, अण्ड-कोष में वीर्य डालना एवं लिङ्ग, ऊरु, जानु, कमर और जंघा-द्वय के कार्य सम्पन्न करना **'अपान'- वायु** का काम है।

पक्व रसादि को बहत्तर हजार नाड़ियों में पहुँचाना, देह को पुष्ट करना और स्वेद निकालना **'समान'- वायु** का काम है।

कान, नेत्र, ग्रीवा, गुल्फ, कण्ठ-देश और कमर के नीचे के भाग की क्रिया करना **'व्यान'-वायु** का काम है।

उद्‌गारादि **'नाग'-वायु,** सङ्कोचनादि **'कूर्म्म'-वायु,** क्षुधा-तृष्णादि **'कृकर'-वायु,** निद्रा-तन्द्रादि **'देवदत्त'-वायु** और शोषणादि कार्य **'धनञ्जय'-वायु** सम्पन्न करता है।

वायु के सब गुण जान कर **वायु-जय** कर सकने से हम अपने शरीर पर इच्छानुरूप आधिपत्य स्थापित कर सकते हैं एवं शरीर स्वस्थ, नीरोग और पुष्टि-कान्ति-युक्त (तन्दुरुस्त) बना सकते हैं।

शरीर में जब तक **वायु** विद्यमान रहता है, तभी तक देह जीवित रहती है। वायु देह से निकलकर यदि पुनः न पहुँचे, तो मृत्यु हो जाती है। **प्राण-वायु** नथुने के रन्ध्र से आकर्षित होकर नाभि-ग्रन्थि तक गमनागमन करता है और गुह्य-स्थान से नाभि-स्थान तक **अपान वायु** नीचे के भाग में गमनागमन करता है। जब नासा-रन्ध्र द्वारा **प्राण-वायु** आकर्षित होकर नाभि-मण्डल का ऊर्ध्व भाग विकसित करता रहता है, ठीक उसी समय **अपान वायु** गुह्य-देश से आकर्षित होकर **नाभि-मण्डल** का अधो-भाग विकसित करता है। इसी प्रकार नासा-रन्ध्र और गुह्य-स्थान, इन दोनों जगहों से **प्राण** और **अपान**— ये दोनों वायु ही **पूरक-काल** में नाभि-ग्रन्थि में आकृष्ट होते हैं एवं **रेचक-काल** में दोनों वायु दोनों तरफ अपने-अपने स्थान में गमन करते हैं। यथा—

अपानः कर्षति प्राणं, प्राणोऽपानं च कर्षति।
रज्जु-बद्धो यथा श्येनो, गतोऽप्याकृष्यते पुनः।
तथा चैतौ विसम्वादे, सम्वादे सन्त्यजेदिद्म।।

—षट्-चक्र-भेद टीका

अपान प्राण-वायु का आकर्षण करता है एवं **प्राण अपान-वायु** का। जैसे श्येन पक्षी रस्सी से बँधे रहने से उड़ जाने पर भी फिर लौट आता है, **प्राण-वायु** भी वैसे ही नासा-रन्ध्र से निकल जाने पर भी **अपान-वायु** द्वारा आकर्षित होकर फिर देह में पहुँच जाता है। इन्हीं दोनों वायुओं के विसम्वाद से अर्थात नाक और लिङ्ग की ओर विपरीत भाव से चलने से ही जीवन रक्षा होती है। फिर जब ये दोनों वायु **नाभि-ग्रन्थि** भेद कर एकत्र मिलकर चलते हैं, तभी ये (दोनों वायु) देह का त्याग करते हैं, सांसारिक सन्दर्भ में तभी जीव की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु-समय के ऐसे भाव को **नाभि-श्वास** कहते हैं। वायु का यह सब तत्त्व जानकर ही **योगाभ्यास** व **स्वर-साधना** में नियुक्त होना उचित है।

* * *

१४. हंस-तत्त्व

मानव देह के भीतर हृदय-देश में **अनाहत-** नामक पद्म के त्रिकोण-पीठ (आसन) पर वायु-वीज **'यं'** विद्यमान है। इस वायु-मण्डल के बीच में काम-कला-रूप, तेजो-मय और रक्त-वर्ण पीठ (आसन) पर कोटि-विद्युत्-सदृश भास्कर, सुवर्ण-वर्ण, **बाण-लिङ्ग शिव** विराजित हैं। उनके मस्तक पर श्वेत-वर्ण, तेजो-मय अति-सूक्ष्म एक **मणि** है, उसमें **निर्वात दीप-कलिका** (वायु-रहित स्थान में स्थिर दीपक) की भाँति **'हंस'** -बीज-प्रतिपाद्य विशेष **तेज** (ज्योति) है। यही जीव का **'आत्मा'** है। अहं-भाव को आश्रय करके वही **जीवात्मा** मानव देह में अवस्थान कर रहा है। हम जो **माया** से मोहित और शोक से कातर होते हैं और सब तरह के सुख-दुःख इत्यादि फल भोगते हैं— वे सब, हम सबका हृदयस्थ वही **जीवात्मा** भोग करता है। **अनाहत पद्म** में यह **जीवात्मा** रात-दिन

साधन व **योग** अथवा **ईश्वर-चिन्तन** करता है। यथा— **'सोऽहं हंसः पदेनैव जीवो जपति सर्वदा।'**

जीव **'हंस'** का विपरीत (उल्टा) **'सोऽहं'** सर्वदा जप करता है। वस्तुतः **पूरक** करते समय स्वाभाविक ढङ्ग से **'सो'**-शब्द का उच्चारण होता है। इसी प्रकार **रेचक** के समय श्वास निकलने से **'अहम्'**- शब्द का स्वाभाविक उच्चारण होता है। इसे **'अजपा-जप'** कहते हैं। इसमें मन्त्र का उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं होती। आवश्यकता है केवल श्वास के **पूरक** और **रेचक** की गति पर ध्यान देने की, जिससे स्वयं अनुभव होगा कि **'सोऽहं'**- मन्त्र का जप स्वतः ही हो रहा है। इस जप से वृत्ति अन्तरात्मा पर रखनी चाहिए अर्थात **'सो'** (वह ईश्वर) और **'अहम्'** (साधक की जीवात्मा)— दोनों मिलकर **'सोऽहं'** हुआ है। इसमें **पूरक** और विशेष कर **रेचक** धीरे-धीरे करना चाहिए।

श्वास-प्रश्वास में **'हंस'** उच्चारित होता है। श्वास-वायु को छोड़ने के समय **'हं'** एवं ग्रहण करने के समय **'सः'** यही शब्द उच्चारित होते हैं। **'हं'— शिव-स्वरूप** और **'सः'—शक्ति-रूपिणी** है। यथा—

हंकारो निर्गमे प्रोक्तः, सकारस्तु प्रवेशने।
हंकारः शिव-रूपेण, सकारः शक्तिरुच्यते॥

—स्वरोदय-शास्त्र १/७

श्वास को छोड़कर यदि ग्रहण न किया जाए, तो मृत्यु हो जाती है। अतएव **'हं' शिव-स्वरूप** वा **मृत्यु** है। **'सः'**-कार से जो श्वास ग्रहण करता है, वही **शक्ति-स्वरूप** है। अतएव यह **श्वास-प्रश्वास ही जीवत्व** है। अतः **'हंस'** ही **जीव का जीवत्व** है। शास्त्र में लिखा है कि **'हंस इति जीवात्मानं'** अर्थात **'हंस ही जीवात्मा'** है। जीव रात-दिन २१,६०० बार **अजपा गायत्री** का 'जप' करता है। यही मानव का **स्वाभाविक जप और साधन** है। इसे जान लेने पर फिर झोली और माला लेकर बाह्यानुष्ठान या उपवासादि का कठोर काय-क्लेश नहीं उठाना पड़ता।

दुःख की बात यह है कि इसके प्रकृत तत्त्व और

संकेत—उपदेश के अभाव से ऐसा **सहज जप-साधन** कोई नहीं समझता। **गुरु के उपदेश** से उक्त **'हंस'**-ध्वनि थोड़ी ही चेष्टा से साधक के कर्ण-गोचर हो जाती है। **'हंस'** का विपरीत (उलटा) **'सोऽहं'** ही **साधक की साधना** है। जीवात्मा सर्वदा यही **'सोऽहं'** (अर्थात मैं वही हूँ, मैं वही परमेश्वर हूँ) शब्द जपा करता है, किन्तु हमारा अज्ञान-तमसाच्छन्न और विषय से विमूढ़ मन उसे उपलब्ध नहीं कर पाता। सामान्य प्रयत्न से यह स्वतः उत्थित (आप से आप निकली), अश्रुत-पूर्व (पहले न सुनी हुई), अनोखी **'हंसः'** और **'सोऽहं'** की ध्वनि-श्रवण करके अपार्थिव परमानन्द का उपभोग कर सकता है।

अनाहत पद्म की पूर्वोक्त **'हंस'**- ध्वनि को ही **प्रणव-ध्वनि** कहते हैं। यथा (परा-परिमलोल्लास)—

शब्द-ब्रह्मेति तां प्राह, साक्षाद् देवः सदा-शिवः।
अनाहतेषु चक्रेषु, स शब्दः परिकीर्त्यते॥

अर्थात **शब्द ब्रह्म** है। वह साक्षात् देवता **सदाशिव** है। वही शब्द **अनाहत-चक्र** में है। **अनाहत पद्म** में **हंसः** उच्चारित होता है। वह **हंस** ही **प्रणव** अर्थात् **ॐकार** होता है। यथा (योग-स्वरोदय)—

हकारं च सकारं च, लोपयित्वा ततः परं।
सधिं कुर्यात् ततः पश्चात्, प्रणवोऽसौ महा-मनुः॥

अर्थात **'हंसः'** का उल्टा **'सोऽहं'** होता है, किन्तु **'स'** और **'ह'** का लय होने से केवल **'ॐ'** रह जाता है। यही हृदयस्थ शब्द-ब्रह्म-रूप **ॐकार** होता है, साधक-गण **शब्द-ब्रह्म-रूप प्रणव-ध्वनि 'ॐकार'** को सुनने की लालसा से **द्वादश-दल** (बारह-पंखुरी) वाले **अनाहत पद्म** का ऊर्ध्व-मुख ध्यान कर गुरु के उपदेशानुसार क्रिया करें, तो उससे **हंसः** व **ॐकार**-ध्वनि कान में भर जाएगी।

शब्द-ब्रह्म-रूप ॐकार के सिवा एक और **वर्ण- ब्रह्म-रूप ॐकार** है। वह **आज्ञा-चक्र** के ऊपर निरालम्ब-पुरी में नित्य विराजमान है। भौंहों के बीच में दो-दल (पँखुरी) वाला श्वेत-वर्ण **आज्ञा-चक्र** है। इस चक्र के ऊपर जहाँ **सुषुम्णा-नाड़ी** का अन्त हुआ है एवं

शंखिनी-नाड़ी का आरम्भ हुआ है, उसी स्थान को **निरालम्ब-पुरी** कहते हैं। वही तेजो-मय **तारक-ब्रह्म का स्थान** है। इसी स्थान में **ब्रह्म-नाड़ी** के आश्रित तारक-बीज—**प्रणव** (**ॐकार**) वर्तमान है। **प्रणव— वेद का प्रतिपाद्य ब्रह्म-रूप** है।

साधक योगानुष्ठान से यथा-विधि **षट्-चक्र-भेद** कर **ब्रह्म-नाड़ी** की सहायता से **निरीलम्ब-पुरी** में पहुँचने पर **महा-ज्योति-रूप ब्रह्म ॐकार** अथवा अपने-अपने **इष्ट-देवता का दर्शन** कर सकता है एवं प्रकृत **निर्वाण-पद** को प्राप्त होता है। सब देव-देवी का बीज-स्वरूप, वेद-प्रतिपाद्य ब्रह्म-रूप **प्रणव-तत्त्व** जानकर साधन करने से **तारक ब्रह्म** के स्थान पर **ज्योतिर्म्मय देव-देवी** का साक्षात् **लाभ** होता है। ऐसे होने पर फिर तीर्थों-आदि में दौड़-धूप कर अकारण कष्ट-भोग सहन नहीं करना पड़ता।

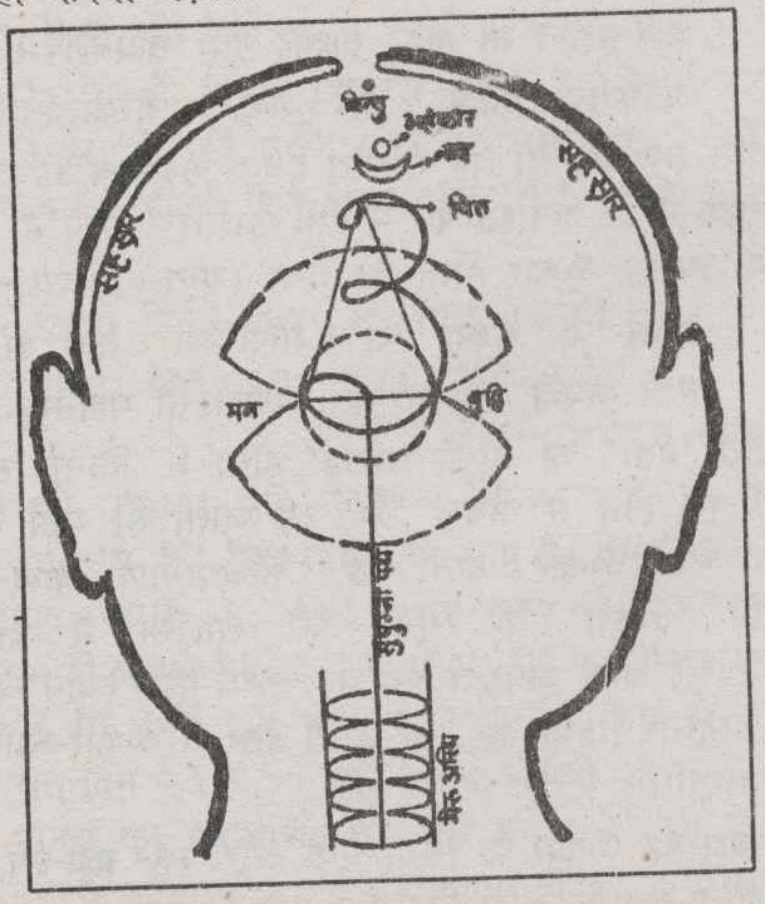

आज्ञा-चक्र-स्थित प्रणव

* * *

प्रयोग-खण्ड

(१) अभीष्ट कार्य-सिद्धि

अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए जिस ओर का **स्वर** चल रहा हो, उसी ओर का पैर आगे बढ़ा कर चलना चाहिए। यदि चलते समय **जल** या **पृथ्वी-तत्त्व** चल रहा हो, तो कार्य निश्चित रूप से सिद्ध होगा।

यदि **दाहिना स्वर** चल रहा हो, तो चलते समय दाहिना कदम पहले पाँच बार आगे रखें अथवा जमीन पर पटकें और फिर अभीष्ट-कार्य के लिए प्रस्थान करें। **बाँएँ स्वर** में बाँयाँ कदम पहले चार बार आगे रखें अथवा जमीन पर पटकें।

इस प्रकार जिस कार्य के लिए भी आप जाएँगे, वह कार्य अवश्य ही सिद्ध होगा।

*

(२) अनुकूलन-वशीकरण

कार्य के लिए जहाँ जाना हो, वहाँ पहुँचकर जिससे काम लेना हो, उस व्यक्ति को उस समय अपना जिस तरफ का **श्वास** चलता हो, उस तरफ रखकर बातचीत करनी चाहिए। अर्थात जिस व्यक्ति को वशीभूत करना हो, उसे अपने चलते **स्वर** की तरफ रखकर वार्त्ता करे। इससे अधिकारी, बन्धु-बान्धव व मित्र अनुकूल होंगे। आपको आश्चर्य होगा कि सामनेवाला व्यक्ति यदि आपका विरोधी भी होगा, तो भी आपकी इच्छानुसार ही कार्य करेगा। क्रुद्ध व्यक्ति भी क्रोध-त्याग कर क्षमा कर देगा तथा अहित न करेगा।

यह विधि उत्तम वशीकरण है। इसके द्वारा किसी भी व्यक्ति

को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है और इसके लिए किसी प्रकार के मन्त्र-तन्त्र के प्रयोग की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

विशेष— यदि नौकरी के लिए साक्षात्कार देने जाना हो, मुकदमे में न्यायालय जाना हो, किसी मन्त्री, अधिकारी या बड़े आदमी से मिलने जाना हो अथवा किसी से भी कोई कार्य कराना हो, तो उपर्युक्त दोनों क्रियाओं का प्रयोग करें। इससे कार्य में अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी और मनोरथ पूर्ण होगा।

चन्द्र-स्वर (बाँएँ स्वर) में सम अर्थात दो, चार, छः आदि कदम बढ़ाकर चलना चाहिए तथा **सूर्य-स्वर** (दाहिने स्वर) में विषम एक, तीन, पाँच कदम बढ़ाकर चलें।

*

(३) शत्रु-वशीकरण

कुम्भक-पूर्वक मुख द्वारा निःश्वास (छोड़ी हुई साँस) वायु को पीते जाना चाहिए। ऐसा करते-करते जब साँस की वायु स्थिर हो जाए, उस समय शत्रु का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से धीरे-धीरे प्रबल शत्रु भी साधक के वश में आ जाएगा।

चन्द्र-स्वर (बाँएँ-स्वर) के चलते समय बाँयीं ओर, **सूर्य-स्वर** (दाहिना स्वर) के चलते समय दाहिनी ओर एवं **मध्य-स्वर** (सुषुम्णा नाड़ी) के चलते समय बीच में खड़े होकर काम करने से लड़ाई-झगड़े में जय-लाभ कर सकते है।

वाद-विवाद के समय, न्यायालय जाते समय या शत्रु के घर जाते समय यदि **सूर्य-स्वर** (दाहिना स्वर) चले और साधक दाहिना कदम (विषम संख्या में) आगे बढ़ा कर (पूर्वोक्त विधि से) प्रस्थान करे, तो शत्रु श्री-हीन होकर पराजित हो जाता है तथा साधक के वश में हो जाता है। जब तक कार्यवाही चले, तब तक यह क्रिया अवश्य करे।

चन्द्र-स्वर (बाँएँ स्वर) में जहाँ तक सम्भव हो, शत्रु के समक्ष न जाएँ और यदि ऐसी स्थिति आ ही जाए, तो **बाँएँ स्वर को बदल कर दाहिने को चलाएँ** और तब शत्रु का सामना करें। इससे

शत्रु कुछ भी बिगाड़ न सकेगा। लेकिन यदि **स्वर** न बदल पा रहा हो अथवा इसके लिए समय न हो, तो फिर बाँएँ कदम को ही (सम संख्या में) आगे बढ़ा कर जाएँ।

जिस नथुने से **स्वर** चल रहा हो, उससे **प्राण-वायु** का कान तक आकर्षण करके (खींचकर), उसी ओर का चरण आगे बढ़ाकर चलने से बली-से-बली शत्रु को पराजित कर सकते हैं।

*

(४) स्त्री-वशीकरण

आजकल कितने ही लोगों को वशीकरण-विद्या सीखने के लिए आग्रह करते हम देखते हैं। वशीकरण-विद्या प्राचीन शास्त्रों में जैसी बताई गई है, उसके अनुसार काम करना साधारण व्यक्ति के लिए आज सम्भव नहीं हो पा रहा है, **स्वरों** के द्वारा यह कार्य अत्यन्त सरलता से किया जा सकता है।

अपने **सूर्य-स्वर** द्वारा स्त्री के **चन्द्र-स्वर** का आकर्षण करके हृदय में रहनेवाले वायु के साथ संस्थापन करे, तो स्त्री आजीवन साधक के वश में रहेगी। शयन के समय, प्रसङ्ग के समय अथवा आलिङ्गन के समय जो मनुष्य अपने **सूर्य-स्वर** से स्त्री के **चन्द्र-स्वर** को पीता है, वह कामदेव के समान मोहित करनेवाला होता है।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्त्री के सोते समय जो पुरुष **सुषुम्णा स्वर** को पीता है, वह पुरुष स्त्री के प्राणों को वश में करता है।

उस काल के व्यतीत होने पर **अष्टाक्षर-मन्त्र का जप** कर जो पुरुष अपना **चन्द्र-स्वर** स्त्री को देता है, वह स्त्री को मोहित करता है।

पुरुष का **सूर्य-स्वर** और स्त्री का **चन्द्र-स्वर** प्रसङ्ग के समय एक हो जाने से या स्त्री के **सूर्य-स्वर** में अपना **चन्द्र-स्वर** मिलाने से पुरुष सौ स्त्रियों को भी मोहित कर सकता है। इत्यादि।

वस्तुतः इन क्रियाओं का प्रयोग पुरुष को अपनी पत्नी पर करना होता है क्योंकि इनमें जो विधान वर्णित है, वह मात्र अपने शयन-कक्ष में कर सकना ही सम्भव होता है। इससे स्त्री वशीभूत होकर अत्यन्त प्रेम करती है। यदि किसी व्यक्ति की पत्नी उसकी

उपेक्षा करती हो, उससे प्रेम न करती हो अथवा किसी पर-पुरुष के चक्कर में पड़ गयी हो, तो वह उपर्युक्त प्रकार से **स्वर-साधना** करके उसे अपने अनुकूल बनाकर वश में कर सकता है।

*

(५) दाम्पत्य-सुख

पुरुष को **दाहिना स्वर** चलते समय और स्त्री को **बाँयाँ स्वर** चलते समय सहवास करना चाहिए। इससे दोनों का शरीर स्वस्थ रहेगा तथा दाम्पत्य-जीवन सदा-सुखी रहेगा।

प्रायः यह देखा गया है कि यदि पुरुष-स्त्री दोनों का एक ही **स्वर** चल रहा हो, तो उस समय के रति-प्रसङ्ग से गर्भ नहीं ठहरता है। इस प्रकार यह **परिवार-नियोजन** का एक अत्यन्त सरल व सहज उपाय है।

*

(६) मनोवांछित सन्तान

सम्भोग के समय पुरुष का **दाहिना स्वर** और स्त्री का **बाँयाँ स्वर** हो तथा उस समय **पृथ्वी** या **जल-तत्त्व** का उदय हो एवं स्त्री की मासिक धर्म से (प्रारम्भ से) ८, १०, १२, १४, १६वीं रात्रि हो, तो इस सम्भोग से हुए गर्भाधान से उत्तम गुण-शील-युक्त तेजस्वी, प्रतापी, श्रेष्ठ पुत्र का जन्म होगा।

यदि पुरुष का **बाँयाँ स्वर** और स्त्री का **दाहिना स्वर** हो तथा उस समय **पृथ्वी** या **जल-तत्व** का उदय हो एवं स्त्री के मासिक धर्म से ७,९,१५वीं रात्रि हो, तो उस गर्भाधान से उत्तम गुण-शील-युक्ता, सौभाग्य-शालिनी कन्या का जन्म होगा।

वस्तुतः मासिक धर्म के प्रारम्भ से १६ दिन स्त्रियों का ऋतु-काल कहा जाता है। इनमें प्रारम्भ के ४ दिन (रात्रियाँ) प्रसङ्ग के लिए निषिद्ध हैं। चौथी रात्रि के गर्भाधान से अल्पायु, दरिद्री व दुःखी रहनेवाले पुत्र तथा छठवीं रात्रि में करने से बिलकुल साधारण श्रेणी के गुण-युक्त पुत्र का जन्म होता है। अतः इनको

हमने पुत्र-प्राप्ति के लिए पंक्तियाँ लिखते समय नहीं लिखा। इसी प्रकार पाँचवीं रात्रि के गर्भाधान से साधारण गुण-युक्त कन्या, ग्यारहवीं रात्रि से अधर्माचरण करनेवाली कन्या, तेरहवीं रात्रि में गर्भाधान करने से मूर्ख, पापिनी, दुःख एवं शोक-प्रदा दुष्टा कन्या का जन्म होता है।

यदि स्त्री को **पृथ्वी-तत्त्व** में गर्भ रहे, तो जो जीव गर्भ में आएगा, वह जन्म लेने पर राजा के समान सुखी, सम्पत्तिशाली व तेजस्वी होगा।

यदि स्त्री को **जल-तत्त्व** में गर्भ रहे, तो उस गर्भ से सुन्दर, सुशील, सौम्य स्वभाव व नम्र-भाषी, धन-वान्, भोगी व सुखी और स्वस्थ सन्तान का जन्म होगा।

यदि स्त्री को **अग्नि-तत्त्व** में गर्भ रहे, तो उससे क्रोधी, निष्ठुर, अहंकारी लेकिन साहसी और शूर-वीर सन्तान का जन्म होगा। लेकिन **अग्नि-तत्त्व** में ठहरा गर्भ प्रायः अल्पायु होता है और प्रसव के समय माता के जीवन को भय होता है।

यदि स्त्री को **वायु-तत्त्व** में गर्भ रहे, तो वह जीव जन्म लेने पर दुःखी, विकल चित्त व अस्थिर-मनोवृतिवाला, भ्रमण-शील, कर्कश स्वभाव का और दुबला-पतला होगा। लेकिन प्रायः **वायु-तत्त्व** में ठहरा गर्भ माँ के पेट में ही नष्ट हो जाता है।

यदि स्त्री को **आकाश-तत्त्व** में गर्भ रहे, तो या तो गर्भ गिर जाएगा अथवा अङ्ग-हीन और कुरूप सन्तान का जन्म होगा।

यदि स्त्री-पुरुष दोनों उक्त सब महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रख कर **स्वर** व **तत्त्व** की अनुकूलता में रति करेंगे, तो निश्चय ही मनोवांछित सन्तान प्राप्त करेंगे। आज विज्ञान कृत्रिम विधियों द्वारा मनचाहे गुणों से युक्त सन्तान के जन्म की बात करता है लेकिन **स्वर-विज्ञान** द्वारा बड़े ही सहज तरीके से प्राकृतिक रूप से यह कार्य सम्भव है।

*

(७) भाग्योदय

प्रातः उठने के समय बिस्तर पर आँख खुलते ही, जिस ओर का **स्वर** चल रहा हो, उसी ओर का हाथ अपने मुख पर फेर

कर शय्या पर बैठें। फिर शय्या से उतरते समय उसी हाथ से पृथ्वी को स्पर्श कर प्रणाम करें और उसी **स्वर** की ओर वाले पैर को पहले भूमि पर रख कर खड़े हों तथा उसी पैर को आगे बढ़ाकर चलें। प्रति-दिन ऐसा करने से भाग्योदय अवश्य होगा।

यह क्रिया यद्यपि बहुत सरल है पर इसका प्रभाव बहुत है। कई ऐसे व्यक्ति, जो अपने को अभागा कहते थे तथा जिनका भाग्य कभी साथ नहीं देता था, इससे लाभान्वित हुए हैं।

*

(८) सन्धि

यदि किसी शत्रु से सन्धि करने की इच्छा हो, तो किसी एक पात्र में जल लेकर शत्रु का स्मरण करते हुए सगुण **स्वर** द्वारा नासिका में चढ़ाएँ, तो थोड़े ही दिनों में शत्रु के हृदय से शत्रुता का भाव दूर हो जाएगा तथा सन्धि हो जाएगी।

*

(९) अग्नि-शान्ति

जिस जगह आग लगी हो और जिस तरफ से हवा के चलने से जोर (गति) पकड़ती हो, उस तरफ जल का पात्र लेकर खड़े हो जाएँ। फिर जो **स्वर** चल रहा हो, उस नासिका-छिद्र से श्वास खींचते हुए उसमें थोड़ा जल भी खींचे। तत्पश्चात् उस पात्र में से सात चुल्लू जल आग में छोड़ दें। थोड़ी देर में ही आग का बढ़ना बन्द हो जाएगा और वह शीघ्र ही बुझ जाएगी।

इस प्रयोग की सत्यता देख कर कोई भी आश्चर्य-चकित हुए बिना न रहेगा।

*

(१०) औषधि

शीत-रोगों की औषधि **दाहिने स्वर** में तथा उष्ण रोगों की औषधि **बाँएँ स्वर** में देने से वह शीघ्र लाभ करती है।

*

(११) दीर्घायु और चिर-यौवन

जिस समय जो **स्वर** चल रहा हो, उसे रोककर दूसरा **स्वर** चलाएँ तथा फिर उसे रोक कर पुनः पिछला **स्वर** चलाएँ। ऐसा अभ्यास नित्य करनेवाला दीर्घायु और चिर-यौवन प्राप्त कर सकता है।

*

(१२) नीरोगावस्था

जो दिन में **बाँयाँ स्वर** और रात में **दाहिना स्वर** चलाता है, उसका शरीर नीरोग रहता है। इससे आलस्य दूर रहता है और चैतन्यता बढ़ती है। अस्वस्थ व्यक्ति भी यदि इस प्रकार नित्य अभ्यास करेगा, तो वह **स्वर-शक्ति** के द्वारा शीघ्र ही रोग-मुक्त हो जाएगा।

*

(१३) उदर-विकार

जिनका पेट बहुधा गड़बड़ रहता हो, जिन्हें अजीर्ण व कब्ज की शिकायत हो, उन्हें भोजन **दाहिना स्वर** चलते समय करना चाहिए तथा जल भोजन के घण्टे भर बाद बाँएँ स्वर में पीना चाहिए। ऐसा करने से पुराना उदर-विकार दूर हो जाएगा।

*

(१४) ज्वर

जब ज्वर का प्रकोप हो, तो जो **स्वर** अधिक चल रहा हो, उसे बन्द करके दूसरा **स्वर** चलाएँ। ऐसा तब तक किया जाए, जब तक ज्वर उतर न जाए।

*

(१५) दर्द

छाती, पीठ, कमर व पेट आदि कहीं भी अकस्मात् दर्द (पीड़ा) होने पर उस समय जो **स्वर** चलता हो, उसे बन्द कर देने से कैसा भी दर्द हो, शीघ्र ही मिट जाएगा।

*

(१६) दमा

जब दमें का दौरा आरम्भ हो और श्वास फूलने लगे, तब जो **स्वर** चल रहा हो, उसे एकदम बन्द कर दें। दस-पन्द्रह मिनट में ही आराम मालूम हो जाएगा।

इस रोग का जड़ से नाश करने के लिए लगातार एक मास तक प्रति-दिन चलते हुए **स्वर** को बन्द करके दूसरे को चलाने का अभ्यास करना चाहिए। **स्वर बदलने का अभ्यास** जितना अधिक किया जाएगा, लाभ उतना ही अधिक और शीघ्र होगा।

हमारा विचार है कि दमा ऐसा रोग है, जो औषधि-सेवन द्वारा सामान्यतः पूरी तरह ठीक नहीं हो पाता लेकिन **स्वर को बदलने का नित्य नियमित रूप से कई बार अभ्यास** करने से यह रोग धीरे-धीरे समूल नष्ट हो जाता है।

*

(१७) स्वर और स्वास्थ्य

जैसा कि हम बता चुके हैं कि संसार में प्राणि-मात्र के लिए **प्राण-वायु** के अतिरिक्त जीवन धारण करने का दूसरा कोई साधन नहीं है। जब तक शरीर में **प्राण-वायु** संतुलित अवस्था में रहती है, तब तक जीवन अबाध-गति से चलता रहता है, किन्तु इसके असंतुलित होते ही शरीर व्याधि-मन्दिर बन जाता है। सर्दी,जुकाम,ज्वर आदि का उत्पात होने लग जाता है।

आजकल स्थान-स्थान पर औषधालयों, चिकित्सालयों की भरमार है, जहाँ सुबह से लेकर शाम तक मरीजों की भीड़ लगी रहती है। वैद्यों और डाक्टरों को रोग-निवारण के लिए बराबर प्रयास करना पड़ता है। रोग-निवारण के लिए पर्याप्त धन-राशि भी व्यय की जाती है। कुछ रोग तो ऐसे होते हैं, जिनका उपचार किया जा सकता है और कुछ ऐसे भी होते हैं, जिन्हें डॉक्टरों और वैद्यों द्वारा असाध्य घोषित कर दिया जाता है।

वृद्धावस्था तो एक ऐसी अवस्था है, जिसमें रोगों का आक्रमण निरन्तर होता ही रहता है। व्यक्ति रोगों का उपचार

करते-करते परेशान हो जाता है और अन्त में पर-लोक की ओर प्रस्थान कर जाता है। वृद्धावस्था में कमर झुक जाती है, दमा-जैसा रोग जड़ पकड़ लेता है। आँखों की ज्योति विदा हो जाती है। कानों में सुनायी कम पड़ता है, शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। त्वचा मांस-पेशियों को छोड़कर झूलने लगती है, लिखने-पढ़ने में हाथों में कम्पन आ जाता है और यहाँ तक कि सिर भी घड़ी की पेंडुलम की तरह हिलता ही रहता है। दाँत उखड़ जाने पर मुख की शोभा पिचक जाती है और उसका कुछ दूसरा ही रूप हो जाता है। यह सब कुछ चिकित्सा से भी ठीक नहीं होता।

प्राचीन काल में चिकित्सालय बहुत कम थे। वैद्यों और डॉक्टरों की दूकानें भी कम ही थीं। फिर भी लोग नीरोग रहा करते थे। दीर्घ आयु उनके जीवन का व्रत था। लोग सौ वर्षों से अधिक जीवित रहते थे—

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति, सं जीव शरदः शतम्॥

—अथर्व-वेद-संहिता १४।१।५२।

विवाह के समय पति पत्नी के लिए अपने साथ-साथ एक सौ वर्षों तक जीने एवं सुख भोगने की कामना किया करता था।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्। (यजुर्वेद अ०३६।२४)

सन्ध्या के अतिरिक्त विवाह के समय भी उक्त मन्त्र का उच्चारण कर **सूर्य भगवान्** का अवलोकन किया जाता था। **वेदों** में इस प्रकार के अनेक मन्त्र हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि लोग सौ वर्षों तक जीवित रहने की कामना किया करते थे। आज के युग में तो पैदा होते ही दवाइयों की आवश्यता पड़ जाती है और मरते समय भी 'कोरामिन' का इन्जेक्शन मरीज की चेतनता के लिए लगाया जाता है। सारा जीवन दवाइयों के बल पर चलता हैं और जब दवाइयाँ प्रभाव-हीन हो जाती हैं, तब जीवन का

अन्त हो जाता है। जब मानवीय शक्ति असफल हो जाती है, तभी **दैवी शक्ति** की मान्यता होती है।

वास्तव में जीवन में मूल-तत्त्व दो ही हैं। एक तो शरीर को स्पन्दित करने के लिए **स्वर** (श्वास) और शरीर को तरल रखने के लिए **जल**। **स्वर** और **जल** की साधना कर लेने पर जीवन में कभी कोई रोग नहीं आता, शक्ति का ह्रास नहीं होता, यहाँ तक कि **स्वर-साधना** से असाध्य-से-असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं।

स्वरों के आधार पर जल-ग्रहण करने से शरीर में किसी प्रकार के रोग का आक्रमण नहीं होता। **चन्द्र-स्वर** शीतलता का और **सूर्य-स्वर** उष्णता का बोधक है। **सुषुम्णा** का प्रवाह अनर्थकारी होता है। इसके समय सिवा भगवान् के भजन के अन्य कार्यों का अनुष्ठान निषिद्ध माना गया है।

बाँएँ स्वर के प्रवाह के समय गरम चाय पीने, गरम दूध पीने, गरम भोजन करने अथवा **दाँएँ स्वर** के प्रवाह के समय ठण्डा पानी पीने, शरबत पीने, ठण्डा भोजन करने या अन्य ठण्डी वस्तुओं का उपयोग करने से सर्दी-जुकाम हो जाने की सम्भावना रहती है। इससे ज्वर का आक्रमण, सिर-दर्द, शरीर में पीड़ा, सुस्ती, भूख न लगना, मन्दाग्नि, अपच, दम फूलने-जैसी बीमारियों का हो जाना स्वाभाविक है।

अनुकूल **स्वर** होने पर इस प्रकार का कोई शारीरिक उत्पात नहीं होता। हम पहले बता चुके हैं कि विपरीत **स्वरों** को कैसे अनुकूल बना लिया जाता है। यदि सहज रूप से **स्वर की अनुकूलता** सम्भव हो, तो प्यास लगने पर या अन्य गरम या शीतल पेय पदार्थों के ग्रहण करते समय **स्वर** बन्द कर लेना चाहिए। अर्थात शीतल जल आदि अथवा गरम चाय या दूध आदि पीते समय नाक से श्वास नहीं लेनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर मुख से श्वास ली जा सकती है। उक्त वस्तुओं के ग्रहण करने के बाद भी दो मिनट तक नाक से श्वास न लेकर मुख से ही श्वास लेनी चाहिए। इससे जीवन भर कभी भी सर्दी-जुकाम या खाँसी की बीमारी नहीं होती तथा ज्वर भी कभी नहीं आता और शरीर सदा स्वस्थ और स्फूर्ति-मय बना रहता है। शक्ति का

ह्रास नहीं होता तथा कमजोरी-आलस्य का प्रभाव भी शरीर पर कभी नहीं पड़ता।

चाहे खूब मेहनत के बाद, चाहे कड़ी धूप के बाद, चाहे दौड़ने या सोने के बाद प्यास लगने पर, बिना विश्राम किए तुरन्त ही जल ग्रहण करना चाहिए। पर ध्यान रहे, जल पीते समय नाक से श्वास नहीं लेनी चाहिए। इससे कभी किसी बीमारी का आक्रमण नहीं होगा। प्यास लगने पर शीघ्र जल ग्रहण न करने से भी कण्ठ में जलन या अधिक प्यास जैसी बीमारियाँ हो जाती हैं।

इसी प्रकार ठण्डे जल से स्नान करते समय **बाँयाँ स्वर,** शौच जाते समय **दाँयाँ स्वर** चलाना चाहिए। यदि **दाँयाँ स्वर** चल रहा हो और ठण्डे जल से स्नान कर लिया जाए, तो सर्दी-जुकाम, सर्दी-गर्मी-जैसी बीमारियों का हो जाना स्वाभाविक है। शौच जाते समय यदि **दाँयाँ स्वर** नहीं चलता होगा, तो पेट साफ नहीं होगा। इसलिए शौच जाते समय यदि **दाँयाँ स्वर** न चलता हो, तो या तो **स्वर** बदल लेना चाहिए अथवा **बाँयीं नासिका** के छिद्र को रुई के फाहे या रुमाल आदि से बन्द कर लेना चाहिए। कुछ दिनों के बाद शौच के समय **दाँयाँ स्वर** स्वाभाविक रूप से चलने लगेगा।

दिल की धड़कन सन्तुलित रखने के लिए, हृदय की गति को पूर्व-वत् बनाए रखने के लिए, वृद्धावस्था में दमा, खाँसी आदि से बचने के लिए श्वास-प्रश्वास की क्रिया सर्वोपयोगी है। श्वास-प्रश्वास क्रिया करने से न तो कभी हृदय-गति रुकने का भय होता है और न श्वास की कभी कोई दूसरी बीमारी ही होती है। **श्वास-प्रश्वास-क्रिया** बैठे-बैठे, लेटे-लेटे या रास्ता चलते-चलते भी किसी भी समय की जा सकती है। इसका अभ्यास करने से न तो कभी **उदर-विकार** होता है, न कभी **मन्दाग्नि** होती है और न कभी **उदर-शूल** जैसी बीमारियाँ ही होती हैं।

श्वास-प्रश्वास-क्रिया तीन प्रकार की होती हैं। एक तो नाक के द्वारा जोर से श्वास खींचकर नाक के रास्ते से बाहर निकाल देना, दूसरा— मुख के रास्ते श्वास खींचकर नाक के रास्ते बाहर निकाल देना। तीसरी क्रिया— नाक के द्वारा जोर से श्वास खींचकर मुँह के रास्ते बाहर निकालना। यह क्रिया इच्छानुसार

एक या दो मिनट से लेकर ज्यादा-से-ज्यादा दस मिनट तक की जा सकती है। सबसे अच्छा समय तो प्रातः-काल का होता है, जबकि पेट साफ हो। किसी आसन पर बैठकर इस क्रिया के करने से अतीव लाभ होता है। रात को सोते समय यह क्रिया लेटकर भी की जा सकती है। सोते समय इस क्रिया के करने से गहरी नींद आ जाती है और रात को एक भी स्वप्न नहीं आता। रात को सदा बाँयी करवट सोने से कभी अपच नहीं होता और प्रातः-काल पेट साफ हो जाता है।

बैठकर **श्वास-प्रश्वास-क्रिया** करने से रीढ़ की हड्डी कभी टेड़ी नहीं होती, वृद्धावस्था तक कमर सीधी रखने से सिर और हाथों में कभी कम्पन-जैसी बीमारी नहीं होती। वृद्धावस्था में जब दाँत गिर जाते हैं, मुँह का आकार भद्दा हो जाता है या मुँह पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, आँखों की ज्योति कम हो जाती है, कानों से कम सुनाई पड़ने लगता है, तब **प्राण-वायु** का स्तम्भन अत्यन्त लाभ-दायक होता है। नियमित रूप से सुबह-शाम मुँह में **प्राण-वायु** का स्तम्भन मुँह के आकार को नहीं बिगड़ने देता और न कभी मुँह में झुर्रियाँ ही पड़ने देता है।

उक्त अभ्यास बड़ा ही सरल है। प्रातः-काल या शाम के समय जमीन या काठ के तख्ते पर किसी आसन पर सीधे बैठकर जोर से नाक के रास्ते मुँह में **प्राण-वायु** को भरकर उसे दो-चार मिनट जितना हो सके, रोकना चाहिए और जब उत्काहट-सी जान पड़े, तब उसे नाक के रास्ते ही बाहर निकाल देना चाहिए। इसी प्रकार कम-से-कम तीन बार और ज्यादा-से-ज्यादा जितनी बार सम्भव हो, इस क्रिया को करते रहने से मुँह की बनावट में अन्तर नहीं पड़ता, साथ ही मुख-सम्बन्धी कोई रोग भी नहीं होता। मुँह में भरी हुई वायु अधिक जोर देने पर यदि आँखों के मार्ग से बाहर निकलने लगती है, तो आँखों की ज्योति कभी नहीं घटती। साथ ही कान के रास्ते से निकलने पर कभी बहरापन भी नहीं होता है।

यह अभ्यास नियमित रूप से करते रहने से स्थायी लाभ होता है और कभी किसी औषधि की आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार साइकिल, बस या ट्रक के ट्यूब में हवा भरकर उससे

लम्बी यात्राएँ कर ली जाती हैं या भार-वाहन का काम ले लिया जाता है, उसी प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में **वायु-स्तम्भन** से नयी स्फूर्ति आती है और शक्ति का ह्रास नहीं होता। इससे त्वचा में भी सिकुड़न नहीं आती और शरीर पत्थर की तरह मजबूत हो जाता है। जिस प्रकार नाक से वायु मुँह में भर कर उसका स्तम्भन किया जाता है, उसी प्रकार **वायु का स्तम्भन** मस्तिष्क में, पेट में और हृदय में भी किया जाता है। मस्तिष्क में **वायु-स्तम्भन** से स्मरण-शक्ति कभी नष्ट नहीं होती, साथ ही घबराहट या चक्कर जैसी बीमारी भी कभी नहीं होती।

पेट में **वायु के स्तम्भन** से उदर-विकार कभी नहीं होते। वायु-विकार भी कभी नहीं होता। हृदय में **वायु-स्तम्भन** से हार्ट फेल (हृदय-गति रुकने) की नौबत नहीं आती और दिल की धड़कन का रोग भी प्रायः शान्त हो जाता है, फेफड़े में भी किसी प्रकार का विकार नहीं आने पाता।

इस प्रकार **स्वर** के उपयोग से जीवन में अनन्त लाभ होते हैं। मानव उसकी जानकारी प्राप्त कर उससे अक्षय आनन्द का उपभोग करने लगता है। **स्वर** जीवन में नियमित रूप से प्रवाहित होता है। प्रातः उठते समय **चन्द्र-स्वर** बहता है। सूर्योदय, मध्याह्न और सूर्यास्त के समय बदलकर **सूर्य-स्वर** बहने लगता है। रात को सोते समय हमेशा बाँयीं करवट सोने से **सूर्य-स्वर** का प्रवाह होता रहता है। इसी प्रकार तिथियों के अनुसार भी **स्वर-प्रवाह** की भिन्न-भिन्न गतियाँ होती हैं, जिनके सम्बन्ध में हम पहले जानकारी दे चुके हैं।

*

(१८) स्वर-साधना से दीर्घायु-प्राप्ति

संसार में कौन दीर्घ-काल तक जीना नहीं चाहता? कहीं कोई बीमारी, शोक या दूसरी दारुण यन्त्रणा से मौत को अच्छा समझता है, किन्तु योगी-गण तो जीवन और मृत्यु इन दोनों से उदासीन रहते हैं। इन लोगों के सिवा और सभी व्यक्ति बहुत दिन जीने की आशा रखते हैं, किन्तु कितने लोग बहुत दिन जीते दिखलाई पड़ते हैं?

आकाल-मृत्यु कितने ही लोगों को रोज पर-लोक का अतिथि बना रही है और जीवन में पूर्ण आयु कितनी है, यह किसी को मालूम भी नहीं पड़ने देती। अकाल-मृत्यु क्यों होती है एवं उसे दूर करने का उपाय क्या है?

आर्य ऋषियों ने मृत्यु का कारण निर्देश करते हुए दिखाया है कि मानव आप ही अपनी मृत्यु का कारण बनता है। अदृष्ट या दृष्ट अर्थात् भाग्य और कर्म, इन दोनों कारणों की जड़— मानव स्वयं ही है। वे कहते हैं कि कर्म-फल पाने के लिए देह उसके काम के उपयोगी बनती है। **सङ्कल्प-विकल्प** ही जीव के जन्म-मृत्यु का कारण है। अतः जब तक **कर्म-फल** है, देह भी तब तक रहती है। जब **कर्म-फल** नहीं रहता, तब देह की क्या आवश्यकता?

इसीलिए देखा जाता है कि देह कभी चिर-स्थायी नहीं रह सकती। वह दो प्रकार से छूटती है — एक तो जब कर्म पूरा हो जाने पर जीव पूर्ण ज्ञान के साथ आसानी से पञ्च-इन्द्रियों से युक्त देह छोड़ता है, जिसे कि **मोक्ष** कहते हैं। दूसरे जब जीव के संचित कर्म, देह को उसके भोग के अनुपयुक्त समझने पर जीव को विवश और अज्ञान-वृत्त करते हुए बल-पूर्वक स्थूल देह से छुड़ाते हैं, तब वह मृत्यु कहलाती है।

ऐसी मृत्यु को ज्ञान या योगानुष्ठानादि द्वारा दूर कर सकते हैं। चित्त को सर्व प्रकार की वासना, दुराशा (बुरी आशा) प्रभृति से निवृत रखना **दीर्घ-जीवन-लाभ का उपाय** है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि प्रबल रिपु-गण किसी प्रकार भी चित्त को दुखा न सकें, ऐसा ही काम करना चाहिए। **ईश्वर में भक्ति** और भरोसा रखकर सन्तोष का अमृत पीने में लग जाने से **दीर्घ-जीवन का लाभ** करना विशेष कठिन नहीं है।

दर्शन, विज्ञान, प्रभृति शास्त्र-निर्माताओं ने विशेष गम्भीरता-पूर्ण युक्तियों द्वारा जीव के जन्म-मृत्यु का कारण एवं **दीर्घ-जीवन-लाभ** का उपाय बताया है। **स्वर-शास्त्र** के अनुसार हम दीर्घ-जीवन कैसे प्राप्त कर सकते है? आइए, इस पर विचार करें।

मानव-शरीर में दिन-रात जो **श्वास-प्रश्वास** चलता है, उसका नाम **प्राण** है। **श्वास** निकलकर फिर देह में न आने से ही जीव की मृत्यु होती है। **निःश्वास** का एक स्वाभाविक नियम यह है कि—

प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो, निर्गमे द्वादशांगुलम्।

श्वास लेते समय यानी नथुने से साधारण रूप से **श्वास** खींचते समय दश अंगुल परिमाण की **श्वास** अन्दर घुसती है। **प्रश्वास** अर्थात् **श्वास** छोड़ते समय बारह अंगुल की वायु बाहर निकलती है। नथुने से एक लकड़ी पर बारह अंगुल मापकर उसी जगह जरा-सी रुई रखकर आजमाइए, यदि उसे पार कर वायु चली जाए, तो रुई हटाकर देखना चाहिए कि उसकी गति कहाँ तक पहुँची है। स्वाभाविक अवस्था में बारह अंगुल से ज्यादा गति होने से समझ लेना चाहिए कि जीवन क्षय के पथ में जा रहा है। ऐसा ज्ञान होने पर **प्राणायाम** के द्वारा इसका निराकरण आसानी से किया जा सकता है।

मनुष्य के श्वास छोड़ते समय बारह अंगुल दूरी तक **प्रश्वास-वायु** निकलती है, लेकिन भोजन, गमन, रमण, गान आदि विशेष कार्यों में स्वाभाविक नियम की अपेक्षा ज्यादा परिमाण से वायु बाहर निकलती है। यथा—

देहाद् विनिर्गतो वायुः, स्वभावाद् द्वादशांगुलिः।
गायने षोडशांगुल्यो, भोजने विंशतिस्तथा॥
चतुर्विंशांगुलिः पान्थे, निद्रायां त्रि-दशांगुलिः।
मैथुने षट्-त्रिंशदुक्तं, व्यायामे च ततोऽधिकम्॥
स्वभावेऽस्य गतौ मूले, परमायुः प्रवर्द्धते।
आयु-क्षयोऽधिके प्रोक्तो, मारुते चान्तरोद्गते॥

अर्थात् गाते हुए श्वास की गति का प्रमाण ३६ अंगुल होता है। खाते समय २० अंगुल, चलते हुए २४ अंगुल, सोते हुए ३० अंगुल, मैथुन करते समय ३६ अंगुल, व्याम आदि कठिन परिश्रम करते समय श्वास की गति का प्रमाण और भी बढ़ जाता है। जो मनुष्य श्वास की उपर्युक्त स्वाभाविक गति के प्रमाण में

जितनी अधिक कमी कर सकेगा अर्थात् घटा सकेगा, वह उतने प्रमाण में अपने **आयुष्य की वृद्धि** कर सकता है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किसी भी कार्य के करते समय १२ अंगुल से अधिक श्वास की गति होने पर **जीवनी-शक्ति** का या **प्राण** का क्षय समझना चाहिए। प्राणायामादि द्वारा इस अस्वाभाविक गति से स्वाभाविक गति में वायु को स्थिर रखना ही **दीर्घ-जीवन-लाभ** का मुख्य उपाय है। **प्राण-वायु** की बाहर की गति कम परिमाण में रखने से आयु बढ़ती है तथा ज्यादा हो जाने पर उम्र का घटना निश्चित है।

निद्रा, गाना, मैथुन प्रभृति जिस-जिस काम में **प्राण-वायु** अधिक परिमाण से बाहर निकलती है, वह काम जितना कम किया जाएगा, उतना ही दीर्घ-जीवन प्राप्त होगा एवं शरीर स्वस्थ रहेगा — इसमें सन्देह नहीं।

नियमित रूप से **प्राणायाम** करने पर **दीर्घ-जीवन-लाभ** होता है। **'प्राण'** शब्द का अर्थ— **'वायु'** तथा **'आयाम'** शब्द का अर्थ— **'रोकना'** होता है। **प्राणायाम** के समय **कुम्भक** करने पर प्राण-वायु रुकता है— सांस नहीं चलती, इसलिए जीवन दीर्घ होता है अर्थात् आयु बढ़ती है और शरीर रोग-शून्य होता है। **प्राण-वायु** जितनी कम खर्च होगी यानी जितनी कम निकलेगी, उम्र उतनी ही बढ़ेगी और बीमारी आदि कम होगी। इससे उल्टा होने पर नाना प्रकार की बीमारी से आयु नष्ट होगी।

मनुष्य सामान्यतया एक अहोरात्र अर्थात् चौबीस घण्टे में २१,६०० **श्वास-प्रश्वास** लेता है। स्वर में धीरे-धीरे श्वास चलने से अल्प (कम) आयु क्षय होती है अर्थात् दीर्घ **श्वास-प्रश्वास** से आयु लम्बी होती है तथा अधिक शीघ्रता से श्वास चलने से आयु क्षीण होती है। साधारण शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि **श्वास** जितनी अधिक धीरे चलेगी, आयु उतना ही अधिक बढ़ेगी और यह एक वैज्ञानिक सत्य भी है।

शास्त्रों में आयु दो प्रकार की कही है— (१) अपवर्तनीय तथा (२) अनपवर्तनीय। **अनपवर्तनीय आयु** उसे कहते हैं, जिसमें बाहर के

किसी भी आघात के कारण मृत्यु न हो अर्थात् अपनी आयु को पूरे समय भोग कर ही इस आयुवाले प्राणी की मृत्यु होती है। दूसरी आयु **अपवर्तनीय** है, इसमें विष के प्रयोग से अथवा किसी अस्त्र-शस्त्र आदि का आघात लगने से आयु-क्षय होकर मृत्यु हो जाती है। इसी आयु का दूसरा नाम **'सोपक्रम' आयु** है।

*

(१६) स्वर-साधना से विविध सिद्धियाँ

जो व्यक्ति **योग** की शक्ति से **श्वास** की स्वाभाविक गति को एक-एक अंगुल के क्रम से कम कर सकता है, **सर्व-सिद्धि** और **अमानुषी क्षमता** उसके बाँएँ हाथ का खेल बन जाती है। यथा—

एकांगुलं कृते न्यूने, प्राणे निष्कामता मता।
आनन्दस्तु द्वितीये स्यात्, काम-शक्तिस्तृतीयके॥
वाचा-सिद्धिश्चतुर्थे च, दूर-दृष्टिस्तु पञ्चमे।
षष्ठे त्वाकाश-गमनं, चण्ड-वेगश्च सप्तमे॥
अष्टमे सिद्धयश्चैव, नवमे निधयो नव।
दशमे दश-मूर्तीश्च, छाया त्वैकदशे भवेत्॥
द्वादशे हंस-चारश्च, गंगामृत-रसं पिबेत्।
आन-नखाग्र-प्राण-पूर्णे, कस्य भक्ष्यं च भोजनम्॥

अर्थात् **श्वास** की गति को १२ अंगुल से घटाकर ११ अंगुल कर लें, तो **प्राण स्थिर** होता है। श्वास की गति को १२ अंगुल से घटाकर १० अंगुल कर लें, तो **महान् आनन्द की प्राप्ति** होती है। ९ अंगुल तक ले जाएँ, तो **कवित्व-शक्ति** आती है। ८ अंगुल तक ले जाएँ, तो **वाक्-सिद्धि** प्राप्त होती है। ७ अंगुल तक ले आने पर **दूर-दृष्टि** प्राप्त होती है। ६ अंगुल तक घटा लें, तो **आकाश-गमन** की शक्ति प्राप्त होती है। ५ अंगुल तक ले आने पर **प्रबल वेग** प्राप्त होता है। ४ अंगुल तक श्वास की गति ले आने पर सभी **सिद्धियाँ** प्राप्त होती हैं। ३ अंगुल तक ले आएँ, तो **नव निधियाँ** प्राप्त होती हैं। २ अंगुल तक श्वास का प्रवाह ले आने पर अनेक रूप धारण करने अर्थात् **रूप-परिवर्तन** की शक्ति मिलती

है। १ अंगुल ले आने पर **अदृश्य होने की शक्ति** प्राप्त होती है। श्वास की गति को १२ अंगुल से घटाकर नखाग्र-सम कर लेने पर यमराज भी स्पर्श नहीं कर सकता अर्थात् **स्वर-साधक अमर** हो जाता है।

*

(२०) स्वरोदय और पुनर्जन्म

प्राणी-मात्र के लिए **स्वर** ही जीवन है और **स्वरावरोध** ही मृत्यु है। जीवन में जो कुछ होता है, वह संसार के लिए प्रत्यक्ष है। उसकी आलोचना, प्रत्यालोचना और समालोचना दृश्य-जगत् में सभी कुछ की जाती है, किन्तु मृत्यु के बाद क्या होता है? बहुत ही रहस्यात्मक है। तात्विकों एवं साधकों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से इस पर विचार किया है। मृत्यु अवश्य ही एक रहस्य है, जिस पर आजकल के विज्ञान का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। इसी से भगवान् की अदृश्य शक्ति का अनुभव होता है।

स्वरोदय का प्रकरण शिशु की गर्भावस्था से प्रारम्भ होकर मृत्यु-पर्यन्त चलता है। जीवन में **स्वर** की प्रक्रियाओं का किस प्रकार समय-समय पर परिवर्तन होता है और फिर वही परिवर्तन **स्वरावरोध** में किस प्रकार परिवर्तित होता है, यह भी परम गोपनीय विषय है, जिसके अध्ययन और मनन की प्रक्रियाएँ कौतूहल-सी प्रतीत होती हैं। स्त्री और पुरुष के **स्वर-संगम** के प्रभाव से पुत्र-पुत्री का किस प्रकार जन्म होता है, यह एक अभ्यास और अनुभव का विषय है।

शिशु के माँ के गर्भ से धरती पर गिरते ही **स्वर-परीक्षण** की आवश्यकता होती है। जिस समय शिशु-प्रसव होता हैं, माँ भी प्रसव-पीड़ा से कातर हो जाती है और बाहर निकलने के प्रयत्न में शिशु भी श्रमित हो जाता है। श्रम के कारण माँ और शिशु दोनों की **स्वर**-प्रवाहिनी नलिकाएँ जोर-जोर से स्फुरित होने लगती हैं। प्रसव के बाद लगभग एक घण्टे तक माँ और शिशु के **स्वर-प्रवाह** में अन्तर नहीं पड़ता।

प्रसव के बाद यदि माँ और शिशु दोनों के **चन्द्र-स्वर** प्रवाहित

होते हों, तो शिशु दीर्घ-जीवी होता है। साथ ही मेधावी और माता-पिता को सुख देनेवाला होता है, यदि दोनों के **सूर्य-स्वर** प्रवाहित होते हों, तो बच्चा तेजस्वी, तपस्वी, परोपकारी और नेतृत्व-शक्तिवाला होता है।

यदि माता और शिशु दोनों के **मध्य-स्वर (सुषुम्णा)** प्रवाहित होते हों, तो शिशु अल्प-जीवी होता है और माता अधिक कष्ट का अनुभव करती है। यदि माता का **चन्द्र-स्वर** और शिशु का **सूर्य-स्वर** प्रवाहित हो, तो शिशु बड़ा होने पर कुल-परम्परा के विपरीत कार्य करता है। साथ ही वह लम्पट, चोर आदि होता हैं।

प्रसव-काल में यदि माता का **सूर्य-स्वर** और शिशु का **चन्द्र-स्वर** प्रवाहित हो, तो शिशु महान् पराक्रमी होता है। बड़े होने पर वह विदेशों की भी यात्रा करता है।

यदि प्रसव-काल में माता और शिशु दोनों के **मध्य-स्वर (सुषुम्णा)** चलते हों, तो दोनों का जीवन अत्यन्त **सङ्कट-मय** हो जाता है। इसमें या तो माता का स्वर्गवास हो जाता है या शिशु का और कभी-कभी दोनों का। माता का **मध्य-स्वर (सुषुम्णा)** और शिशु का **चन्द्र-स्वर** प्रवाहित होता हो, तो शिशु कौमारावस्था में स्वर्गवासी होकर अन्य योनियों में पुनर्जन्म ग्रहण करता है और यदि माता का **मध्य-स्वर (सुषुम्णा)** और शिशु का **सूर्य-स्वर** चलता हो, तो शिशु युवा अवस्था आते-आते स्वर्ग-वासी होकर पुनः मनुष्य योनि में **पुनर्जन्म** ग्रहण करता है उसे अपने **पूर्व-जन्म की स्मृति** बनी रहती है तथा उसका विकास कौमारावस्था से ही होने लगता है। यह स्मृति ज्यादा-से-ज्यादा बीस वर्षों तक रहती है। बीस वर्ष पहुँचते-पहुँचते या तो वह स्वर्गवासी हो जाता है या उसकी **पूर्व-जन्म की स्मृति** नष्ट हो जाती है। वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने पर भी स्मृति जाती रहती है।

नव-द्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।

—श्रीमद्-भगवद्-गीता ५/१३

शरीर नौ द्वारोंवाला होता है। नौ द्वारों में दो आँख, दो नासिका-छिद्र, दो कान, मुख, गुदा और लिङ्ग-द्वार होते हैं। इनसे

अन्दर की वस्तुएँ बाहर निकलती हैं। केवल मुख ही एक ऐसा द्वार है, जिससे स्वाभाविक रूप से बाहर की वस्तु (खाद्य-पेय-पदार्थ) अन्दर जाती है। **प्राण-वायु** अन्तिम समय में इन्हीं में से किसी एक द्वार से बाहर निकलती है और शरीर निष्प्राण हो जाता है। अन्त समय में **प्राण-वायु** जिस द्वार पर अवरुद्ध हो जाती है, उसी द्वार से बाहर भी निकलती है।

कभी-कभी अन्तिम समय में **प्राण-वायु** नवों द्वारों से हटकर **ब्रह्माण्ड** में स्थित हो जाती है और **ब्रह्माण्ड** को छोड़कर बाहर निकलती है। ऐसा साधकों, तपस्वियों को ही होता है। **प्राण-वायु** जब ऊर्ध्व-वायु का रूप ग्रहण कर शरीर से निकलती है, तब उसका **पुनर्जन्म** चेतन प्राणी की योनि में होता है और जब **प्राण-वायु** अधो-वायु का रूप ग्रहण कर शरीर का परित्याग करती है तब उसका **पुनर्जन्म** नीची योनि में होता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने **पुनर्जन्म** पर बहुत कुछ कहा है, जिससे **पुनर्जन्म** का होना निर्विवाद सिद्ध है किन्तु कुछ ऐसी अवस्थाएँ अवश्य होती हैं, जबकि मनुष्य का **पुनर्जन्म** नहीं होता। इसके लिए **ब्रह्म-प्राप्ति** का साधन ही सर्वश्रेष्ठ है।

मस्तिष्क में रमी हुई **प्राण-वायु** जब नेत्र-मार्ग से बाहर निकलती है, तब उसका पुनर्जन्म मनुष्य योनि में ही होता है और पूर्व-स्मृति बराबर जाग्रत रहती है। जिस नेत्र से **प्राण-वायु** का बहिर्गमन होता है, वह नेत्र कुछ अधिक बड़ा और विस्फारित-सा हो जाता है। इसी तरह जिस नासिका-छिद्र से **प्राण-वायु** बाहर निकलती है, उसी ओर नाक टेढ़ी हो जाती है। मुख से **प्राण-वायु** निकलने पर वह फटकर भयावना हो जाता है। जिस कर्ण-मार्ग से **प्राण-वायु** शरीर से बाहर निकलती है, वह कान दूसरे की अपेक्षा शीघ्र ही जड़ और टेढ़ा हो जाता है। मल और मूत्र-द्वार से **प्राण-वायु** के गमन करने पर मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय की भी यही दशा हो जाती है किन्तु जब **ब्रह्माण्ड** फोड़कर **प्राण-वायु** का गमन होता है, तब मृतक की बड़ी ही आकर्षक आकृति हो जाती है। उसकी सौम्यावस्था सुप्तावस्था-सी प्रतीत होती है। ऐसा सौभाग्य ज्ञानियों, भक्तों और महात्माओं को ही प्राप्त होता है। ऐसे प्राणी का **पुनर्जन्म** नहीं होता।

'विराट् पुराण' में चौरासी लाख योनियों का वर्णन है। वहाँ सत्रज, अयुज, जरायुज और उदर-वीर्य योनि-श्रेणियों में विभाजित कर हर-एक की संख्या इक्कीस लाख निरूपित की गई है। 'सत्रज'-योनि में ताराओं की संख्या नौ लाख, मेघ चार लाख और पहाड़ आठ लाख वर्णन किए गए हैं। 'अयुज'-योनि में नाग नौ लाख, जल-चर प्राणी चार लाख और पक्षी आठ लाख तथा 'जरायुज'-योनि में दोपदे नौ लाख, चौपदे चार लाख और कीड़े-मकोड़े आठ लाख, परिगणित किए गए हैं। 'उदर-वीर्य' योनि में निरूपित निर्गन्ध पौधे नौ लाख, सुगन्धित चार लाख और कन्द-मूल आठ लाख की संख्या में निरूपित किए गए हैं, जिनका बहुत बड़ा विश्लेषण है।

किसी-किसी ने चौरासी लाख योनियों को सोलह लाख सत्व-गुणी, बत्तीस लाख रजो-गुणी और छत्तीस लाख तमो-गुणी बतलाया है। ८४ लाख का और भी कई प्रकार से वर्णन मिलता है। वास्तव में जीव-योनि एक रहस्यात्मक विषय है और इसका सम्बन्ध **पूर्व-जन्म** तथा **पुनर्जन्म** से है। **पुनर्जन्म** का विषय भी असाधारण है।

स्वरोदय का ज्ञान दर्पण की भाँति स्वच्छ और निर्मल है। सांसारिक प्राणियों का **पुनर्जन्म** अवश्य होता है, यह विषय भी निर्विवाद है, किन्तु किस योनि में **पुनर्जन्म** होता है, इसका ज्ञान **स्वरोदय** से प्राप्त किया जा सकता है। नासिका-छिद्रों से **प्राण-वायु चन्द्र-स्वर, सूर्य-स्वर** और **मध्य-स्वर (सुषुम्णा)** के माध्यम से बाहर निकलती है। इन स्वरों में **अग्नि** अथवा **वायु-तत्त्व** मिले होने से **प्राण-वायु** ऊर्ध्व-श्वास का रूप ग्रहण करती है।

अग्नि-तत्त्व से संयुक्त यदि **प्राण-वायु चन्द्र-स्वर** के मार्ग से प्रयाण करती है, तो जीव को **प्रेत-योनि** प्राप्त होती है और यदि **सूर्य-स्वर** के मार्ग से **प्राण-वायु** का निष्क्रमण होता है, तो भी जीव को **विकृत योनि** अर्थात् भूत-पिशाच की योनि ही प्राप्त होती है। **वायु-तत्व** से मिश्रित **प्राण-वायु** के निकलने पर जीव को **अल्पायु योनि** मिलती है; कीड़े-पतंगों आदि वायु में उड़ने-वाले प्राणियों में जीव का **पुनर्जन्म** होता है, **जल-तत्व** से युक्त **प्राण-वायु** के प्रयाण करने पर जल-चर जीव-धारियों में जीव का **पुनर्जन्म** होता है। **पृथ्वी-तत्व** से मिली हुई यदि **प्राण-वायु चन्द्र-स्वर** के मार्ग से शरीर का परित्याग

करती है, तो **मनुष्य-योनि** में ही **पुनर्जन्म** प्राप्त होता है और जीव को अपनी पूर्व-स्मृति बनी रहती है, किन्तु यदि **प्राण-वायु पृथ्वी-तत्व** से युक्त **सूर्य-स्वर** के मार्ग से प्रयाण करती है, तो जीव को **पशु-योनि** में जाना पड़ता है। इसी प्रकार **आकाश-तत्व** से मिश्रित **प्राण-वायु** के गमन करने पर या तो **पुनर्जन्म** होता ही नहीं और यदि होता है, तो वह गर्भावस्था में ही विनिष्ट हो जाता है।

इस तरह **स्वरोदय** के माध्यम से **प्राण-वायु** निष्क्रमण के सूक्ष्माति-सूक्ष्म सिद्धान्त हैं, जिनसे जीव के **पुनर्जन्म का रहस्य** स्पष्ट होता है। जिस प्रकार **मनुष्य-योनि में पुनर्जन्म** प्राप्त होने पर कभी-कभी प्रारब्ध-वश **पुनर्जन्म की स्मृति** बनी रहती है, उसी प्रकार **प्राण-वायु** के शरीर परित्याग करने के पहले भावी योनि का भी ज्ञान किसी-किसी जीव को हो जाता है और यदि स्वस्थावस्था में **प्राण-वायु** के निकलने का समय निकट आ जाता है, तो मनुष्य भावी योनि का पूरा वृत्तान्त भी स्पष्ट कर देता है।

मृत्यु-काल में **स्वरोदय की परीक्षा** करना मरनेवाले व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है और स्व-जनों की प्रवृत्ति करुणावस्था में परिवर्तित हो जाती है। अतः मरनेवाले प्राणी की **स्वर-परीक्षा** अन्य व्यक्ति को, जो **स्वरोदय** का ज्ञाता हो, करनी चाहिए। इसी तरह प्रसव-काल में **स्वर-परीक्षा** दूसरे के द्वारा ही सम्भव है।

*

(२१) छाया-पुरुष-साधना

स्वर-साधना में **छाया-पुरुष** का महत्व-पूर्ण स्थान है। अभ्यास से यह प्रत्यक्ष होकर अनेक दुर्लभ बातों का संदेश देता है। **स्वर-ज्ञान** के आदि उपदेशक **भगवान् शङ्कर** हैं। **छाया-पुरुष** के रूप में **भगवान् शङ्कर** के ही दर्शन होते हैं और उन्हीं से अभ्यासी साधक जीवन-मरण का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है। इसके अभ्यास का प्रकरण इस प्रकार है—

अभ्यासी को बस्ती से दूर किसी निर्जन एकान्त स्थान पर सूर्य की ओर पीठ करके बैठ जाना चाहिए और **छाया-पुरुष भगवान् शङ्कर का स्मरण** कर धूप में पड़ती हुई कण्ठ-छाया को ध्यान-पूर्वक देखने और उसी पर अपनी दृष्टि जमाने का अभ्यास करना

चाहिए। ऐसा कम-से-कम सात दिनों तक प्रति-दिन दो घंटे तक अभ्यास होना आवश्यक है। अवकाश होने पर इससे अधिक समय तक भी अभ्यास किया जा सकता है। ऐसा करने से दृष्टि नियन्त्रित हो जाती है और मन कण्ठ-भाग की छाया में केन्द्रित हो जाता है।

इसके अनन्तर आठवें दिन से आकाश की ओर दृष्टि जमाकर मन-ही-मन निम्न मन्त्र का प्रति-दिन १०८ बार जप करना चाहिए।

'हीं पर-ब्रह्मणे नमः।'

जब तक मन्त्र का जप पूरा न हो जाए, तब तक एक-निष्ठ होकर आकाश की ही ओर देखते रहना चाहिए। ऐसा करने से छः महीने के अन्दर ही **भगवान् शङ्कर** के विभिन्न रूप आकाश में दृष्टि-गोचर होने लगते हैं। लगातार यह अभ्यास दो वर्षों तक यदि अबाध गति से होता रहा, तो **शिवत्व की भावना** स्वयं अभ्यासी में जाग्रत हो जाती है। अभ्यास में उस समय अवरोध पैदा हो जाता है, जब कि आकाश में मेघाच्छन्न रहता है, किन्तु यह अवरोध केवल दृष्टि का बाधक होता है, अभ्यास में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस तरह अभ्यास पूरा हो जाने पर **वाणी में सिद्धि** आ जाती है। यदि यह अभ्यास तपस्या के रूप में चलता रहा, तो अभ्यासी **त्रिकाल-दर्शी** हो जाता है, सांसारिकता से दूर वह **ब्रह्म-मय** हो जाता है। भूख-प्यास की आकांक्षा शान्त हो जाती है। मन निश्चल होकर सर्वदा **भगवान् शङ्कर के प्रत्यक्ष दर्शन** करने का अभ्यासी हो जाता है।

यदि प्रथमतः अभ्यास में **भगवान् शङ्कर** के दर्शन चमकते हुए **स्फटिक-मणि** की तरह होते हैं, तो वह व्यक्ति अपने अभ्यास में सफल होता है और उसकी मृत्यु उसकी इच्छा पर निर्भर रहती है। यदि निर्मल आकाश में **भगवान् शङ्कर** का रूप **श्याम-वर्ण** का दिखलायी पड़ता है, तो अभ्यासी का जीवन छः महीने का होता है। यदि **भगवान् शङ्कर** का रूप **पीले रङ्ग** का दिखलाई पड़ता है, तो अभ्यास सिद्ध नहीं होता और अभ्यासी रोग-ग्रस्त हो जाता है। **लाल रङ्ग** का रूप प्रदर्शित होने पर अन्तरात्मा में भय पैदा होता है, साथ ही अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, जिससे अभ्यासी अपने अभ्यास में सफल नहीं होता। यदि **भगवान् शङ्कर**

के दर्शन **विभिन्न रङ्गों** में होते हैं, तो योगी का अभ्यास पूर्ण सिद्धि को प्राप्त होता है। **भगवान् शङ्कर** का यह दर्शन स्थायी भी होता है और अभ्यासी जो चाहता है, माँग सकता है, बात कर सकता है और वह स्वयं **शिव-रूप** हो जाता है।

छाया-पुरुष का अभ्यास और ध्यान सदा शुद्ध मन और पवित्रता से ही करना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन विशेष-रूप से किया जाना चाहिए और सदा शिव-चरणों में अभ्यासी का चित्त केन्द्रित होना चाहिए। सांसारिक होते हुए भी सांसारिकता में लिप्त नहीं होना चाहिए। जीवन-रक्षा के लिए एक बार स्वल्पाहार ही करना चाहिए। इस तरह इसके लिए मन और शरीर दोनों की साधना आवश्यक है।

छाया-पुरुष से मृत्यु की सूचना मिलती है। यदि अभ्यासी को **छाया-पुरुष (भगवान् शङ्कर)** के पाँव-पेट न दिखलायी पड़ें और भुजाएँ कटी हुई प्रतीत हों, तो अभ्यासी अल्पायु होता है और उसका अभ्यास सफल नहीं होता। यदि दाहिनी भुजा भर ही कटी हुई दिखलाई पड़े, तो बन्धु का नाश और बाँयीं भुजा कटी हुई दिखाई दे, तो स्त्री का मरण अवश्यम्भावी होता है। दोनों भुजाएँ कटी हुई प्रतीत होने पर वह स्वयं उसकी मृत्यु का सूचक होता है। इसी तरह **छाया पुरुष** के कान, कंधा या अन्य कोई अङ्ग स्पष्ट दिखलायी न पड़े, तो भी अभ्यासी अल्पायु होता है।

*

(२२) मन्त्र-साधना और षट्-कर्म

दाहिने स्वर के प्रवाह के समय **उग्र मन्त्र** तथा **बाँएँ स्वर** के चलते समय **सौम्य मन्त्र की साधना** करना श्रेयस्कर रहता है। **मध्य स्वर** तो **प्रभु-नाम-सङ्कीर्तन** के लिए सर्वोत्तम है।

पृथ्वी-तत्व में **'स्तम्भन'**, **जल-तत्व** में **'शान्ति-कर्म'**, **वायु-तत्व** में **'उच्चाटन'**, **अग्नि-तत्व** में **'क्रूर-कर्म'**, **वशीकरण** तथा **आकाश-तत्व** के उदय में **'विद्वेषण'** के तान्त्रिक प्रयोग करने चाहिए।

* * *

स्वर-ज्योतिष

(१) स्वर-विद्या द्वारा फलादेश

प्रश्न-कर्त्ता द्वारा प्रश्न पूछने पर उत्तर-दाता (दैवज्ञ) को अपना **स्वर** तुरन्त देखना चाहिए क्योंकि प्रश्नोत्तर का फल मूलतः दैवज्ञ के **स्वर** की स्थिति के अनुसार ही होता है। इस सन्दर्भ में **उदित व अस्त स्वर, सगुण** व **निर्गुण स्वर** आदि तथ्यों की जानकारी व **स्वरों के गुण-धर्म** का ज्ञान ज्योतिषी के लिए परमावश्यक है।

सामान्यतया **'उदित स्वर'** की दिशा से पूछा गया प्रश्न शुभ फल का तथा **'अस्त स्वर'** की ओर से पूछा गया प्रश्न अशुभ फल का सङ्केत करता है। **'सगुण स्वर'** की स्थिति में प्रश्न-फल शुभ तथा **'निर्गुण स्वर'** की अवस्था में प्रश्न-फल अशुभ जानना चाहिए।

दाहिना स्वर चर व उग्र कार्यों में तथा **बाँयाँ स्वर** स्थिर व सौम्य कार्यों में सफलता का सङ्केत करता है।

विशेष— ज्योतिषी के लिए **'गणित'** और **'फलित'** दोनों का ज्ञान बहुत आवश्यक है। इस सन्दर्भ में हमने अध्ययन-अनुसन्धान करने पर यह पाया है कि जब **दाहिना स्वर (सूर्य-स्वर)** चलता है, तब गणित-ज्योतिष का कार्य (अभ्यास) करने पर उसमें अति शीघ्र ही प्रवीणता प्राप्त हो जाती है।

फलित-ज्योतिष का अध्ययन **बाँएँ स्वर** में करना उचित है। इस समय जन्म-कुण्डली देखकर फलादेश करने में अत्यन्त सफलता प्राप्त होती है तथा भविष्य-वाणी सत्य होती है।

*

(२) तत्त्व का विचार

प्रश्न का उत्तर देते समय दैवज्ञ को **स्वर में उदित तत्त्व** का अवश्य विचार करना चाहिए। **तत्त्व का विचार** किए बिना किया

गया फलादेश अधिकतर गलत हो जाता है। यथा—

पृथ्वी-तत्त्व

रोगी से सम्बन्धित प्रश्न— रोग में शीघ्र आराम होनेवाला है।

प्रवासी से सम्बन्धित प्रश्न— सुख में है किन्तु आने में देर है।

गर्भ से सम्बन्धित प्रश्न— लड़का पैदा होगा।

विवाह से सम्बन्धित प्रश्न— विवाहित-जीवन सुख-मय होगा।

यात्रा से सम्बन्धित प्रश्न— यात्रा सकुशल होगी लेकिन वापसी देर से होगी।

अतिथि से सम्बन्धित प्रश्न— अतिथि आएँगे, तो देर से वापस जाएँगे पर शुभ फल मिलेगा।

व्यापार से सम्बन्धित प्रश्न— धीरे-धीरे लाभ। बाजार तेजी पर जाएगा।

नष्ट-वस्तु से सम्बन्धित प्रश्न— पूर्व दिशा में है, विलम्ब से मिलेगी।

जल-तत्त्व

रोगी से सम्बन्धित प्रश्न— रोगी शीघ्र स्वस्थ होगा।

प्रवासी से सम्बन्धित प्रश्न— सुख-पूर्वक है, शीघ्र आनेवाला है।

गर्भ से सम्बन्धित प्रश्न— कन्या पैदा होगी।

विवाह से सम्बन्धित प्रश्न— दाम्पत्य-जीवन में सदैव सुख-शान्ति रहेगी।

यात्रा से सम्बन्धित प्रश्न— यात्रा सफल होगी और बिना किसी परेशानी के शीघ्र वापसी होगी।

अतिथि से सम्बन्धित प्रश्न— अतिथि शीघ्र ही वापस जाएँगे तथा शुभ फल मिलेगा।

व्यापार से सम्बन्धित प्रश्न— व्यापार में शीघ्र लाभ। बाजार में तेजी आएगी, खरीद करना लाभ-दायक।

नष्ट-वस्तु से सम्बन्धित प्रश्न— पश्चित दिशा में है, शीघ्र मिलेगी।

अग्नि-तत्त्व

रोगी से सम्बन्धित प्रश्न— रोगी स्वस्थ न होगा। उसकी मृत्यु हो जाएगी।

प्रवासी से सम्बन्धित प्रश्न— रोग-ग्रस्त है अथवा बड़ी कठिनाई में है।

गर्भ से सम्बन्धित प्रश्न— पुत्र होगा।

विवाह से सम्बन्धित प्रश्न— दाम्पत्य-जीवन पर सङ्कट का योग।

यात्रा से सम्बन्धित प्रश्न— मरण या दुर्घटना की सम्भावना।

अतिथि से सम्बन्धित प्रश्न— नुकसान देकर जाएगा।

व्यापार से सम्बन्धित प्रश्न— हानि का योग। बाजार में मन्दी आएगी।

नष्ट-वस्तु से सम्बन्धित प्रश्न— दक्षिण दिशा में, पहले तो मिलेगी ही नहीं और यदि मिली भी, तो नष्ट स्थिति में।

वायु-तत्त्व

रोगी से सम्बन्धित प्रश्न— दीर्घ-काल तक पीड़ा-भोग का योग है।

प्रवासी से सम्बन्धित प्रश्न— दुःखी है। जहाँ गया था, वहाँ नहीं है, कहीं और चला गया है।

गर्भ से सम्बन्धित प्रश्न— पुत्री होगी।

विवाह से सम्बन्धित प्रश्न— सम्बन्ध-विच्छेद या वियोग-योग।

यात्रा से सम्बन्धित प्रश्न— योजना से अधिक यात्रा करनी पड़ेगी और वह कष्ट-प्रद होगी।

अतिथि से सम्बन्धित प्रश्न— अभ्यागत कोई आएगा, तो हानि पहुँचाएगा।

व्यापार से सम्बन्धित प्रश्न— हानि होगी। बाजार में बहुत घट-बढ़ होगी।

नष्ट-वस्तु से सम्बन्धित प्रश्न— उत्तर दिशा में। सामान मिलेगा नहीं, केवल बात सुनने में आएगी।

आकाश-तत्त्व

आकाश-तत्त्व में सांसारिक प्रश्नों का उत्तर अशुभ जानना चाहिए।

*

(३) स्वर-विद्या द्वारा प्रश्नोत्तर

लग्न, वार, तिथि, नक्षत्र, राशि तथा **दिशा** एवं **प्रश्न की अक्षर-संख्या** आदि— इन सब बातों का **स्वर** व **तत्त्व** के साथ मिलान करके प्रश्न का उत्तर देने से वह निश्चित रूप से सत्य सिद्ध होता है। उपर्युक्त तथ्यों का वर्णन **'ज्ञान-खण्ड'** में हो चुका है।

१. सफलता और असफलता

अब हम **स्वर-विद्या** द्वारा विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देने की प्रक्रिया को विस्तार से स्पष्ट कर रहे हैं —

यदि प्रश्न-कर्त्ता यह पूछे कि मुझे अमुक कार्य में सफलता मिलेगी या नहीं; तो यह देखें कि उस समय कौन-सा **स्वर** चल रहा है और प्रश्न-कर्त्ता की स्थिति क्या है।

यदि प्रश्न-कर्ता दैवज्ञ के **पूर्ण स्वर** (चलते हुए स्वर) की तरफ से प्रश्न करे, तो उसे अपने अभीष्ट कार्य में सफलता मिलेगी, परन्तु यदि वह दैवज्ञ के **रिक्त स्वर** (बन्द स्वर) की ओर से प्रश्न करे, तो प्रश्न का परिणाम विपरीत समझें।

यदि प्रश्न-कर्ता उत्तर-दाता के **चल रहे स्वर** की ओर से प्रश्न करते हुए उसके **बन्द स्वर** की ओर आकर बैठ जाए, तो उस प्रश्न-कर्त्ता को अपने कार्य में प्रारम्भ में सफलता तथा बाद में असफलता मिलेगी और अन्ततोगत्वा उसका काम नहीं बन पाएगा।

यदि प्रश्न-कर्त्ता उत्तर-दाता के **बन्द स्वर** की ओर से प्रश्न करते हुए उसके **चालू स्वर** की ओर आकर बैठ जाए, तो

प्रश्न-कर्ता को कार्य के प्रारम्भ में विघ्न-बाधा का सामना करना पड़ेगा, पर अन्त में उसे सफलता मिल जाएगी।

निर्गुण स्वर में प्रश्न करने पर अशुभ फल तथा **सगुण स्वर** में प्रश्न करने पर शुभ फल समझें।

बाँएँ स्वर में **पृथ्वी** या **जल-तत्त्व** के चलते समय कोई प्रश्न करे, तो कहना चाहिए कि तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा। पर **वायु, अग्नि** या **आकाश-तत्त्व** के उदय में यह कहना चाहिए कि कार्य सिद्ध न होगा।

दाहिने स्वर में **वायु, अग्नि** और **आकाश-तत्त्व** चर-कार्यों में सिद्धि का सङ्केत करते हैं।

२. लाभ-हानि

लाभ-हानि विषयक प्रश्नों का उत्तर भी इसी प्रकार दिया जा सकता है। यथा— यदि प्रश्न-कर्त्ता उत्तर-दाता के **चल रहे स्वर (उदित-स्वर)** की ओर से प्रश्न करे, तो उसे अपने कार्य में लाभ होगा लेकिन यदि **बन्द-स्वर (अस्त-स्वर)** की ओर से प्रश्न किया जाए, तो हानि का योग समझें।

यदि प्रश्न-कर्ता उत्तर-दाता के **पूर्ण स्वर** की ओर से प्रश्न करते हुए **रिक्त-स्वर** की तरफ आकर बैठ जाए, तो प्रश्न-कर्ता को अपने कार्य के प्रथम चरण में लाभ पर बाद में हानि का योग समझें।

परन्तु यदि प्रश्न-कर्ता **रिक्त-स्वर** की तरफ से प्रश्न करते हुए **पूर्ण स्वर** की तरफ आकर बैठ जाए, तो उसे अपने कार्य के प्रारम्भ में हानि पर बाद में लाभ का योग जाने।

प्रश्न के समय यदि दैवज्ञ का **सगुण स्वर** चल रहा हो, तो लाभ तथा **निर्गुण स्वर** की स्थिति में हानि का योग समझें।

प्रश्न के समय **जल-तत्त्व** के होने पर तुरन्त लाभ, **पृथ्वी-तत्त्व** में थोड़े विलम्ब से लाभ, **वायु-तत्त्व** में स्वल्प लाभ, **अग्नि व आकाश-तत्त्व** में हानि समझें।

३. रोगी और रोग

यदि प्रश्न-कर्त्ता **रोगी या रोग** के विषय में पूछे, तो उसका उत्तर इस प्रकार दें—

यदि प्रश्न-कर्त्ता उत्तर-दाता के **चल रहे स्वर** की ओर से प्रश्न करें, तो रोगी ठीक हो जाएगा।

यदि प्रश्न-कर्त्ता **बन्द स्वर** की तरफ से प्रश्न करे, तो रोगी को स्वास्थ्य-लाभ न होगा।

यदि प्रश्न-कर्त्ता **बन्द-स्वर** की ओर से प्रश्न करते हुए चालू **स्वर** की ओर आकर बैठ जाए, तो रोगी मरणासन्न अवस्था में भी होने पर बच जाएगा। लेकिन यदि प्रश्न-कर्त्ता **चालू स्वर** की ओर से प्रश्न करते हुए **बन्द स्वर** की तरफ आकर बैठ जाए, तो स्वास्थ्य-लाभ करते हुए रोगी की भी हालत पुनः बिगड़ जाएगी।

निर्गुण स्वर चल रहा हो, तो रोग प्राण-घातक समझें तथा **सगुण स्वर** रोगी का जीवित रहना इंगित करता है।

पृथ्वी या **जल-तत्त्व** के उदय में प्रश्न-फल शुभ तथा **अग्नि, वायु** या **आकाश-तत्त्व** में प्रश्न-फल अशुभ होता है।

यदि प्रश्न-कर्ता यह पूछे कि रोगी को क्या रोग है, तो दैवज्ञ को अपने **स्वर** में **तत्त्व का विचार** करके इस प्रकार उत्तर देना चाहिए—

यदि **स्वर** में उसका अपना **तत्त्व** चल रहा हो, तो रोगी को एक रोग है, ऐसा कहना चाहिए। जैसे **बाँएँ स्वर** में यदि **पृथ्वी-तत्त्व** चलता हो, तो कहना चाहिए कि रोगी को एक रोग है और वह कफ के प्रकोप से हुआ है। यदि **दाहिना स्वर** और **अग्नि-तत्त्व** हो, तो पित्त-जनित रोग से पीड़ित समझना चाहिए। यदि **दाहिने स्वर** में **वायु-तत्त्व** चलता हो, तो कह देना चाहिए कि रोगी वायु-जनित रोग से पीड़ित है।

यदि दूसरे **स्वर** में दूसरा **तत्त्व** चल रहा हो, तो दैवज्ञ को यह उत्तर देना चाहिए कि मिश्र भाव का रोग है अर्थात् यदि **बाँएँ स्वर** में **अग्नि-तत्त्व** चलता हो, तो कफ और पित्त-मिश्रित रोग समझें। **बाँएँ स्वर** में यदि **वायु-तत्त्व** का उदय हो, तो कफ और वायु मिश्रित रोग समझें। यदि **दाहिने स्वर** में **पृथ्वी** या **जल-तत्त्व** का प्रवाह हो, तो कफ और पित्त-जनित रोग जानना चाहिए।

४. गर्भ

यदि **बन्द स्वर** की ओर से प्रश्न किया जाए, तो गर्भ है अन्यथा नहीं। **चालू स्वर** की ओर से प्रश्न किया जाए, तो इस बात का द्योतक है कि प्रथमतः तो स्त्री गर्भवती है ही नहीं और यदि है, तो गर्भ-पात हो जाएगा।

यदि दैवज्ञ का **दाहिना स्वर** हो, तो गर्भ से पुत्र, **बाँयाँ** हो, तो कन्या और यदि **सुषुम्णा (मध्य) स्वर** हो, तो नपुंसक का जन्म या गर्भ-नाश समझें।

यदि प्रश्न-कर्ता व उत्तर-दाता दोनों का ही **दाहिना स्वर** चल रहा हो, तो पुत्र भाग्य-शाली, स्वस्थ और दीर्घायु-वान् होगा लेकिन यदि उत्तर-दाता का **दाहिना** तथा प्रश्न-कर्ता का **बाँयाँ स्वर** हो, तो पुत्र को दुर्भाग्यशाली, रोगी एवं अल्पायु समझें।

इसी प्रकार यदि प्रश्न-कर्ता एवं उत्तर-दाता दोनों का ही **बाँयाँ स्वर** चल रहा हो, तो पुत्री सौभाग्य-शालिनी, स्वस्थ और दीर्घायु होगी। परन्तु यदि उत्तर-दाता का **बाँयाँ** तथा प्रश्न-कर्ता का **दाहिना स्वर** हो, तो पुत्री दुर्भाग्य-शालिनी, रोगी व अल्पायु होगी।

दैवज्ञ के यदि **दाहिने स्वर** में **पृथ्वी-तत्त्व** चलता हो, तो कहें कि पुत्र का जन्म होगा। वह रूपवान, राज-मान्य तथा सुखी होगा। **जल-तत्त्व** चलता हो, तो यह कहना चाहिए कि सुखी, धनवान् व षट्-रसों के भोगी पुत्र का जन्म होगा।

दैवज्ञ के यदि **बाँएँ स्वर** में पृथ्वी या जल-तत्त्व चलता हो, तो सुखी, धनवती, रूपवती कन्या का जन्म होगा।

गर्भ-सम्बन्धी प्रश्न करते समय **स्वरों** में **अग्नि-तत्त्व** चलता हो, तो दैवज्ञ को यह कहना चाहिए कि गर्भ फिर गिर जाएगा अथवा यदि सन्तान हो भी जाएगी, तो कह देना चाहिए कि पिण्डाकृति बनी है, वह गिर जाएगी अथवा गर्भ में ही नष्ट हो जाएगी।

यदि **दाहिने स्वर** में **आकाश-तत्त्व** चलता हो, तो नपुंसक पुत्र और यदि **बाँएँ स्वर** में **आकाश-तत्त्व** चल रहा हो, तो बाँझ कन्या का जन्म होगा।

एक मत के अनुसार यदि **दोनों स्वर** चल रहे हों और **दाहिना**

स्वर प्रबल हो, तो दो पुत्र और यदि **बाँयाँ स्वर** प्रबल हो, तो दो कन्याओं के जन्म का योग होता है।

५. प्रवासी

प्रश्न के समय उत्तर-दाता (दैवज्ञ) के **बाँएँ स्वर** में **पृथ्वी-तत्त्व** का उदय हो, तो प्रवासी प्रवास में कुशलतापूर्वक है, यह जानना चाहिए। **जल-तत्त्व** का उदय हो, तो प्रवासी वापिस आ रहा है, लेकिन मार्ग में किसी रुकावट के कारण रुक गया है, यह जानें। **अग्नि-तत्त्व** का उदय हो, तो प्रवासी को कष्ट में समझना चाहिए। **वायु-तत्त्व** हो, तो प्रवासी उस स्थान से कहीं और चला गया है या जाने की योजना बना रहा है। **आकाश-तत्त्व** में प्रवासी को रोगी जानना चाहिए।

यदि प्रश्न के समय उत्तर-दाता का **दाहिना स्वर** हो तथा **पृथ्वी-तत्त्व** का उदय हो, तो प्रवासी परदेश में ही है। **जल-तत्त्व** का उदय हो, तो प्रवासी को वापिस लौटता हुआ समझें।

अग्नि-तत्त्व में प्रवासी को रोगी जानें। **वायु-तत्त्व** में अन्यत्र चला गया हुआ समझें। **आकाश-तत्त्व** का उदय हो, तो प्रवासी को मृत्यु-तुल्य कष्ट में समझना चाहिए।

मध्यम स्वर में **आकाश-तत्त्व** और **पृथ्वी-तत्त्व** का सङ्गम हो, तो प्रवासी की मृत्यु समझें।

६. युद्ध

यदि कोई युद्ध के निमित्त **भरे स्वर (उदित स्वर)** की तरफ से प्रश्न करे, तो जिसका नाम पहले लिया जाएगा, उसकी विजय होगी और बादवाले की हार होगी।

यदि **रिक्त स्वर (अस्त स्वर)** की तरफ से प्रश्न किया जाए, तो जिसका नाम पहले लिया जाएगा, उसकी हार होगी और दूसरे पक्ष की जीत होगी।

प्रश्न-कर्ता जिसके लिए पूछे, उसके नाम के अक्षर सम हों (दो, चार, छः, आठ आदि) और दैवज्ञ का **बाँयाँ स्वर** चलता हो तथा प्रश्न-कर्ता दैवज्ञ से **बाँयीं तरफ** हो, तो उसे निश्चित रूप से विजय प्राप्त हो।

यदि प्रश्न-कर्ता दैवज्ञ से **दाहिनी तरफ** हो और नाम के अक्षर विषम हों (तीन, पाँच, सात इत्यादि) तथा दैवज्ञ का **दाहिना स्वर** चल रहा हो, तो प्रश्न-कर्ता जिसके सन्दर्भ में प्रश्न पूछ रहा हो, उसे निश्चय ही विजय प्राप्त हो।

कुछ आचार्य का मत है कि नाम के अक्षरों के स्थान पर प्रश्न के **अक्षरों के आधार** पर उपर्युक्त प्रकार से फलादेश करना चाहिए।

यदि **पृथ्वी-तत्त्व** में कोई युद्ध के लिए प्रश्न करे, तो कह देना चाहिए कि दोनों पक्ष बराबर रहेंगे।

यदि प्रश्न-कर्ता युद्ध में जाने के लिए प्रश्न पूछे और उत्तर देनेवाले के **स्वर** में **जल-तत्त्व** चलता हो, तो कह देना चाहिए कि दोनों पक्षों में सन्धि होगी।

युद्ध के लिए प्रश्न करे और उस समय **अग्नि-तत्त्व** हो, तो उसकी युद्ध में अवश्य हार हो।

यदि **वायु-तत्त्व** में कोई युद्ध के लिए प्रश्न करे, तो उसे युद्ध में हार कर भागना पड़ेगा।

आकाश-तत्त्व में यदि कोई युद्ध-विषयक प्रश्न करे, तो उसे सावधान कर दे कि यदि युद्ध के लिए जाएगा, तो उसकी निश्चित ही मृत्यु हो जाएगी।

यदि कोई युद्ध में घायल होनेवाले व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे, तो उसे इस प्रकार उत्तर देना चाहिए—

यदि प्रश्न-कर्ता उत्तर-दाता के **चल रहे स्वर** की ओर से प्रश्न करे, तो घात नहीं होता है अर्थात् जिस व्यक्ति के सन्दर्भ में प्रश्न पूछा जा रहा है, वह युद्ध में सकुशल है।

यदि प्रश्न-कर्ता उत्तर-दाता के **बन्द स्वर** की तरफ से प्रश्न करे, तो घात होता है अर्थात् जिसके बारे में प्रश्न पूछा गया है, वह युद्ध में घायल है। अब यह प्रश्न उठता है कि उसके किस दिन अङ्ग में घाव लगा है? इसका निर्णय इस प्रकार करें—

यदि दैवज्ञ का **पृथ्वी-तत्त्व** चल रहा हो, तो पाँव में। **अग्नि-तत्त्व** चल रहा हो, तो छाती में। **वायु-तत्त्व** चल रहा हो, तो जाँघ में। **आकाश-तत्त्व** चल रहा हो, तो घायल व्यक्ति के सिर में।

७. मूक प्रश्न

स्वर-ज्योतिष द्वारा यह जाना जा सकता है कि प्रश्न-कर्त्ता के मन में क्या है और वह किस विषय में प्रश्न पूछना चाहता है?

यदि **पृथ्वी-तत्त्व** चलता हो, तो जान लेना चाहिए कि पूछने वाले के मन में 'मूल' की चिन्ता है। यदि **जल-तत्त्व** अथवा **वायु-तत्त्व** चल रहा हो, तो जान लेना चाहिए कि पूछनेवाले के मन में 'जीव' की चिन्ता है। यदि **अग्नि-तत्त्व** हो, तो 'धातु की चिन्ता' जाननी चाहिए। **आकाश-तत्त्व** हो, तो प्रश्न-कर्त्ता को विचार-शून्य समझें।

हमारे विचार से यदि **पृथ्वी-तत्त्व** हो, तो धन-सम्पत्ति, व्यापार-विषयक प्रश्न; **जल-तत्त्व** हो, तो सुख-शान्ति, सन्तान के सन्दर्भ में प्रश्न; **अग्नि-तत्त्व** हो, तो वाद-विवाद, युद्ध-मुकदमा के विषय में प्रश्न; **वायु-तत्त्व** हो, तो यात्रा, भूत-प्रेत, तन्त्र-सम्बन्धी प्रश्न तथा **आकाश-तत्त्व** हो, तो अध्यात्म, मोक्ष या संन्यास आदि से सम्बन्धित प्रश्न समझें। साधकों से हमारा यह आग्रह है कि वे इस सन्दर्भ में परीक्षण करके देखें क्योंकि **स्वर-ज्योतिष** का मर्म-अभ्यास व अनुभव से ही ज्ञात होता है।

८. वर्षा

वर्षा-सम्बन्धी प्रश्न यदि **पृथ्वी-तत्त्व** में किया जाए, तो वर्षा होगी। **जल-तत्त्व** में प्रश्न किया जाए, तो बादल तो घिरें किन्तु वर्षा न हो। **अग्नि-तत्त्व** में थोड़ी-सी वृष्टि हो। **आकाश-तत्त्व** में भयङ्कर तूफान की स्थिति समझें।

पृथ्वी-तत्त्व और **जल-तत्त्व— चन्द्र-स्वर** में तथा **अग्नि** और **वायु-तत्त्व— सूर्य-स्वर** में तथा **आकाश-तत्त्व— मध्य स्वर सुषुम्णा** में अपना पूर्ण फल प्रदर्शित करते हैं। इस तरह विचार कर दैवज्ञ को वर्षा-सम्बन्धी भविष्य-वाणी करनी चाहिए।

९. कृषि-उत्पादन

कृषि-उत्पादन के सम्बन्ध में यदि प्रश्न-कर्ता प्रश्न करे, तो दैवज्ञ अपने **स्वर** और **तत्त्व** का विचार कर इस प्रकार फलादेश करें—

चन्द्र-स्वर चल रहा हो, तो प्रचुर मात्रा में तथा **सूर्य-स्वर** में अल्प मात्रा में धान्य के उत्पादन की सम्भावना होती है।

पृथ्वी और **जल-तत्त्व** में कृषि-उत्पादन की स्थिति बहुत अच्छी समझें तथा **अग्नि** और **वायु-तत्त्व** में स्थिति इसके विपरीत जानें।

आकाश-तत्त्व में **सुषुम्णा** के योग में भयङ्कर आकाल पड़ने की बात कहें।

इसी प्रकार दैवज्ञ **स्वरों व तत्त्वों के योग का विचार** कर तथा उनका सूक्ष्मता-पूर्वक अध्ययन कर अन्य प्रश्नों का भी भली-भाँति उत्तर दे सकता है।

स्वर-विद्या के द्वारा प्रश्नों का उत्तर देने की प्रक्रिया अत्यन्त सरल व सूक्ष्म है। **स्वरों** का नित्य नियमित रूप से अभ्यास करने वाला किसी भी समय सही उत्तर पञ्चाङ्ग व जन्म-कुण्डली के बिना ही दे सकता है। हमारे विचार से प्रत्येक ज्योतिषी को इस विद्या का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

१०. संवत्सर-फल (वर्ष-फल)

दैवज्ञ को चैत्र शुक्ला प्रतिपदा (१) को प्रातः-काल सूर्योदय के समय **स्वरों** और **तत्त्वों** की स्थिति पर विचार कर उस वर्ष का फल कहना चाहिए।

यदि प्रातः समय **चन्द्र-स्वर** में **पृथ्वी-तत्त्व** चलता हो, तो समझना चाहिए कि यह वर्ष अति सुख-दायक होगा। वर्षा ठीक होगी अर्थात कृषि-उत्पादन अच्छा होगा। राज्य-पक्ष और जनता दोनों को सब प्रकार से सन्तोष व आनन्द होगा। किसी भी प्रकार का इस वर्ष में उत्पात नहीं होगा तथा भय और कष्ट का सर्वथा अभाव होगा।

यदि उस दिन प्रातः-काल **चन्द्र-स्वर** में **जल-तत्त्व** हो, तो उसका फल यह होगा कि इस वर्ष में सब प्रकार से सुभिक्ष होगा। वर्षा उत्तम होगी और खेती में पैदावार बहुत होगी। सर्वत्र सब प्रकार से शान्ति रहेगी तथा लोगों का धर्म के प्रति अति अनुराग होगा। राज्य-पक्ष और जनता दोनों ही सुख-शान्ति का अनुभव करेंगे।

यदि ये दोनों तत्त्व (**पृथ्वी** और **जल-तत्व**) प्रातः काल **सूर्य-स्वर** में चलते हो, तो इसका वर्ष में मध्यम फल होगा।

प्रातः-काल यदि **सूर्य-स्वर** में **अग्नि-तत्त्व** हो, तो जानना चाहिए कि जनता रोग और शोक से अत्यन्त पीड़ित होगी और क्लेश पाएगी। देश में अकाल पड़ेगा, कृषि-उत्पादन बहुत कम होगा और प्राकृतिक प्रकोप से अत्यन्त हानि होगी। कई बड़े भयङ्कर अग्नि-काण्ड होंगे, जिनसे जीवन और धन की बड़ी क्षति होगी। राज्य पक्ष पर सङ्कट आएगा।

यदि प्रातः-काल **सूर्य-स्वर** में **वायु-तत्त्व** चले, तो राष्ट्र में अशान्ति, अव्यवस्था और दंगा-फसाद की स्थिति हो। वर्षा कम हो (अल्प वृष्टि) तथा कृषि-उत्पादन भी सूखा पड़ने के कारण बहुत कम हो।

सुषुम्णा-स्वर (मध्य-स्वर) यदि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा (१) को प्रातः-काल चले, तो राष्ट्राध्यक्ष की मृत्यु अथवा उस पर गम्भीर सङ्कट का आगमन समझें। सर्वत्र अशांति-अराजकता की स्थिति हो तथा महा-मारी व दुर्भिक्ष जन-धन की भीषण हानि हो।

जिस समय मेष-संक्रान्ति लगे अर्थात मेष राशि में सूर्य प्रवेश करे, उस समय श्वास को स्थिर करके **स्वर** और उसमें चलनेवाले **तत्त्व** को देखना चाहिए—

यदि **चन्द्र-स्वर** में **पृथ्वी-तत्त्व** चलता हो, तो यह जान लेना चाहिए कि यह वर्ष राष्ट्र के लिए उत्तम रहेगा। इस वर्ष उन्नति, सुभिक्ष, उत्तम कृषि और सुवृष्टि आदि शुभ फल प्राप्त होंगे। जनता और राज्य-पक्ष दोनों ही सुखी रहेंगे। राष्ट्र को किसी बाहरी आक्रमण का भय न होगा तथा देश में आन्तरिक स्थिति भी ठीक रहेगी।

जिस समय मेष-संक्रान्ति लगे उस समय **चन्द्र-स्वर** में **जल-तत्त्व** चलता हो, तो यह जान लेना चाहिए कि वर्षा बहुत अच्छी होगी तथा धन-धान्य की प्रचुरता होगी। सर्वत्र सुख-शान्ति रहेगी। किसी भी प्रकार की महामारी या प्राकृतिक प्रकोप के कारण क्षति न होगी, राष्ट्राध्यक्ष की स्थिति मजबूत होगी और उसकी लोक-प्रियता बढ़ेगी।

सारांश यह है कि **चन्द्र-स्वर** में **पृथ्वी** और **जल-तत्त्व** चलते हों, तो बहुत ही उत्तम योग होता है, लेकिन यदि ये दोनों तत्त्व **सूर्य-स्वर** में चलते हों, तो शुभ फल कम प्राप्त होगा।

किसी भी **स्वर** में यदि **अग्नि-तत्त्व** चलता हो, तो यह जान लेना चाहिए कि इस वर्ष वर्षा कम होगी, दुर्भिक्ष होगा तथा धन-धान्य की कमी व मंहगाई से जनता त्रस्त रहेगी। राज्य-पक्ष के लिए चुनौती का समय होगा।

किसी भी **स्वर** में यदि **वायु-तत्त्व** चलता हो, तो यह जान लेना चाहिए कि सत्ता-पक्ष में परस्पर विरोध के कारण नेतृत्व-परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इस वर्ष वर्षा बहुत कम होगी, जिससे सूखा पड़ेगा और कृषि-उत्पादन अत्यन्त प्रभावित होगा।

यदि उक्त समय में **आकाश-तत्त्व** चलता हो, तो यह जान लेना चाहिए कि यह वर्ष अत्यन्त प्रतिकूल रहेगा। बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ेगा और पशुओं तक के लिए घास-चारा भी न होगा। राष्ट्राध्यक्ष अथवा देश के किसी प्रमुख व्यक्ति का निधन होगा।

माघ मास के शुक्ल-पक्ष की सप्तमी (७) तथा वैशाख मास के शुक्ल-पक्ष की तृतीया (३) को **स्वरों** और **तत्त्वों का विचार** कर (प्रातः-काल सूर्योदय के समय) भी पूर्वोक्त फलादेश के अनुसार **वर्ष-फल** जाना जा सकता है।

११. व्यक्तिगत भविष्य-फल

यदि **चैत्र मास में शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा** (१) तिथि को अपना **चन्द्र-स्वर** न चलता हो, तो जानना चाहिए कि तीन मास तक बहुत चिन्ता और क्लेश होगा।

यदि **चैत्र शुक्ला द्वितीया** (२) के दिन अपना **चन्द्र-स्वर** न चले, तो यह जानना चाहिए कि परदेश में जाना होगा और वहाँ बहुत दुख भोगना पड़ेगा।

यदि **चैत्र शुक्ला तृतीया** (३) के दिन अपना **चन्द्र-स्वर** न चले, तो जानना चाहिए कि शरीर में गरमी, पित्त, ज्वर, रक्त-विकार आदि रोग होंगे।

यदि **चैत्र शुक्ला** (४) के दिन अपना **चन्द्र-स्वर** न चले, तो जान लेना चाहिए कि नौ महीने तक भयङ्कर कष्ट भोगना पड़ेगा।

यदि **चैत्र शुक्ला पञ्चमी** (५) के दिन अपना **चन्द्र-स्वर** न चले, तो जान लेना चाहिए कि अवश्य ही बहुत बड़ा राज-दण्ड होगा।

यदि **चैत्र शुक्ला षष्ठी** (६) के दिन अपना **चन्द्र-स्वर** न चले, तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष के अन्दर ही किसी प्रिय-जन अथवा निकट सम्बन्धी की मृत्यु होगी।

यदि **चैत्र शुक्ला सप्तमी** (७) के दिन अपना **चन्द्र-स्वर** न चले, तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष पत्नी को अत्यधिक पीड़ा होगी।

यदि **चैत्र शुक्ला अष्टमी** (८) के दिन अपना **चन्द्र-स्वर** न चले, तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष स्वयं को कष्ट और पीड़ा अधिक होगी तथा भाग्य साथ न देगा।

इस प्रकार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम आठ तिथियों में **चन्द्र-स्वर** के न चलने से उत्पन्न होनेवाले अशुभ फलों को जानना चाहिए।

१२. आयुष्य-ज्ञान

प्रातःकाल सूर्योदय होने पर जैसे सूर्यास्त अवश्य होता है, दिन ढल जाने पर जैसे रात्रि का आगमन निश्चित है, वैसे ही जन्म लेने पर मृत्यु भी अवश्य होती है। **शङ्करावतार शङ्कराचार्य जी** ने कहा है कि—

यावज्जननं तावन्मरणं तावज्जननी-जठरे शयनम्।

इस परिवर्तन-शील नश्वर जगत् में किसी बात की स्थिरता और निश्चयता नहीं है, केवल मृत्यु ही निश्चित है। इस मर्त्य जगत् में कोई अमरत्व लाभ नहीं कर सका है। शास्त्रों से ज्ञात होता है—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो, हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च, सप्तैते चिरजीविनः।।
.....मार्कण्डेयमथाष्टमम्।।

मात्र इन्हीं आठ व्यक्तियों ने मृत्यु को जीतकर चिरंजीवी पद

प्राप्त किया है। तन्त्र, पुराण, आयुर्वेद, ज्योतिष और स्वरोदय प्रभृति शास्त्रों में मृत्यु के अनेक प्रकार लक्षण लिखे हैं, जिनके द्वारा मृत्यु के समय का ज्ञान किया जा सकता है, लेकिन साधारण व्यक्ति के लिए यह जानना बिल्कुल दुःसाध्य है। यहाँ मैं **स्वर-विज्ञान** द्वारा **काल-ज्ञान की प्रक्रिया** को स्पष्ट कर रहा हूँ—

यदि आठ प्रहर तक (दिन-रात, चौबीस घंटे) **सूर्य-स्वर** ही चलता रहे, बीच में बिल्कुल न बदले, तो तीन वर्ष की आयु जाननी चाहिए अर्थात् उस दिन से तीन साल के बाद उसकी मृत्यु होगी।

जिस मनुष्य का **सूर्य-स्वर** दो दिन (४ घण्टे) तक बराबर चलता रहे, बीच में बिल्कुल न बदले, उसकी दो वर्ष में मृत्यु होगी।

जिस मनुष्य का तीन दिन (बहत्तर घण्टे) तक **सूर्य-स्वर** चलता रहे, उसकी एक वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिए।

रात में **चन्द्र-स्वर** और दिन में **सूर्य-स्वर** लगातार चले, तो छः महीनों के अन्दर मृत्यु होती है।

जिसकी **श्वास दाहिने नथुने** से सोलह दिन तक लगातार बिना बदले चले, उसकी उसी दिन से एक मास में मृत्यु होगी।

यदि तीन पक्षों (४५ दिनों) तक **विपरीत स्वरों** का उदय हो अर्थात् **सूर्य** के बदले **चन्द्र** और **चन्द्र** के बदले **सूर्य** का उदय हो, तो उस मनुष्य की छः मास में मृत्यु हो। दो पक्ष **विपरीत स्वर** चले, तो प्रिय बन्धु को विपदा आए। एक पक्ष तक यदि **वायु (स्वर) विपरीत** चले, तो भयङ्कर व्याधि उत्पन्न हो। यदि दो-तीन दिन तक **स्वर विपरीत** चले, तो क्लेशादि पैदा हों।

यदि **चन्द्र-स्वर** तीन-रात चले, तो कुछ परेशानी हो और यदि एक महीने तक चले, तो रोग उत्पन्न हो।

दिन में पाँच **स्वर-संक्रान्ति** बीतने के बाद यदि वायु मुख से चले, तो धन की हानि, प्रिय-जन-वियोग आदि अशुभ फल हों।

तेरह **स्वर-संक्रान्तियों** के बाद स्वर यदि **बाँयीं नासिका** में से चले, तो वह रोग और उद्वेगादि होने की सूचना है।

मार्गशीर्ष-संक्रान्ति से लेकर यदि **एक ही स्वर** में पाँच दिन तक निरन्तर पवन चलता रहे, तो उस दिन से अठारहवें वर्ष मृत्यु होगी।

आश्विन मास की संक्रान्ति से **एक ही स्वर** पाँच दिन तक निरन्तर चले, तो उस दिन से पन्द्रहवें वर्ष में मृत्यु हो।

श्रावण मास की संक्रान्ति से पाँच दिनों तक **एक ही स्वर** लगातार चले, तो बारहवें वर्ष में मृत्यु हो।

ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति से पाँच दिनों तक **एक ही स्वर** चले, तो नवें वर्ष मृत्यु हो।

चैत्र मास की संक्रान्ति से पाँच दिन तक **एक ही स्वर** बराबर चले, तो छठे वर्ष मृत्यु हो।

माघ-संक्रान्ति से पाँच दिन तक **एक ही नासिका से पवन** चले अर्थात् **स्वर का प्रवाह** हो, तो तीन वर्ष में मृत्यु हो।

उपर्युक्त महीनों की संक्रान्ति से यदि दो-तीन-चार दिनों तक एक नासिका में से पवन चले अर्थात **स्वर का प्रवाह** हो, तब जितने वर्षों में मृत्यु बतायी गई है, उसको पाँच से भाग देकर जो उत्तर आए, उसको उतने वर्षों से गुणा करके जो **उत्तर** आए, उतने वर्ष की आयु जानें।

विशेष १— जब बारह घण्टों का दिन और बारह घण्टों की रात हो, तो वह **विषुवत्-समय** कहलाता है। कोई **विषुवत्-काल** का ऐसा अर्थ करते हैं कि जितने समय **सूर्य** और **चन्द्र-स्वर** एक साथ दोनों चलें, वह **विषुवत्-काल** है।

२— जब एक **स्वर** को बदलकर दूसरा **स्वर** चलने जा रहा हो, तो उस समय **स्वर-संक्रान्ति** होती है।

३— शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा (१) से **स्वरोदय में मास की संक्रान्ति** होती है।

१३. पौष्ण काल

पौष्ण काल का लक्षण— जन्म-नक्षत्र में **चन्द्रमा** हो और अपनी राशि से सातवीं राशि में **सूर्य** हो तथा जितनी **चन्द्रमा** ने जन्म-राशि

भोगी हो, उतनी ही **सूर्य** ने सातवीं राशि भोगी हो, तब **'पौष्ण'**-नाम का काल होता है। यह **'पौष्ण'-काल** मृत्यु-निर्णय करने में कारण-भूत है अर्थात् इस काल में **स्वर का विचार** कर मृत्यु का निर्णय किया जा सकता है।

'पौष्ण-काल' में यदि आधे दिन तक 'सूर्य-स्वर' चले, तो चौदहवें वर्ष में मृत्यु हो। यदि सारा दिन 'सूर्य-स्वर' चले, तो १२ वर्षों में मृत्यु हो। यदि दिन-रात सूर्य-स्वर चले, तो दसवें वर्ष में मृत्यु हो। यदि चार दिन-रात **सूर्य-स्वर** चले, तो चौथे वर्ष में मृत्यु हो, पाँच दिन चले, तो तीन वर्ष में मृत्यु हो।

'पौष्ण-काल' में यदि छः दिन **सूर्य-स्वर** चले, तो १०५६ दिन, सात दिन से १००८ दिन, आठ दिन से ६३६ दिन, दस दिन से ७२० दिन, ग्यारह दिन से ६६६ दिन, बारह दिन से ६४८ दिन, तेरह दिन से ५७६ दिन, चौदह दिन से ४८० दिन, पन्द्रह दिन से ३६० दिन, सोलह दिन से ३४८ दिन, सत्रह दिन से ३२४ दिन, अठारह दिन से २८८ दिन, उन्नीस दिन से २४० दिन, बीस दिन से १८० दिन, इक्कीस दिन से १७४ दिन, बाईस दिन से १६२ दिन, तेईस दिन से १४४ दिन, चौबीस दिन से १२० दिन, पच्चीस दिन से ६० दिन, छब्बीस दिन से ६० दिन, सत्ताईस दिन से ३० दिन, अट्ठाईस दिन से १५ दिन, उनतीस दिन से १० दिन, तीस दिन से ५ दिन, इकतीस दिन से ३ दिन, बत्तीस दिन से २ दिन, तेतीस दिन से १ दिन में मृत्यु होती है। **'पौष्ण-काल'** में **सूर्य-स्वर** चलने से मृत्यु-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने का यही निर्णय है।

'पौष्ण-काल' में यदि उपर्युक्त दिनों में **चन्द्र-स्वर** चले, तो उतने समय के हिसाब से मृत्यु के बदले व्याधि, मित्र-विनाश, महा-भय, परदेश-गमन, धन-विनाश, पुत्र-विनाश तथा अन्य अशुभ फल प्राप्त हों।

*

(४) उपसंहार

अब तक तो आप यह भली-भाँति समझ ही गए होंगे कि **स्वर-विद्या** मानव-समाज के लिए कितना उपयोगी विषय है। इसी

से **स्वर-ज्ञानी** की प्रशंसा में **स्वरोदय-शास्त्र** में कहा गया है—

स्वर-ज्ञानी नरो यत्र, धनं नास्ति ततः परम्।
गम्यते स्वर-ज्ञानेन, अनायासं फलं लभेत्॥

जहाँ पर **स्वर-ज्ञानी** पुरुष है, वहाँ उससे अधिक श्रेष्ठ धन दूसरा कुछ भी नहीं हैं क्योंकि स्वर के ज्ञान से अनायास ही सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं।

स्वर-ज्ञानं नरे यत्र, लक्ष्मीः पाद-तले भवेत्।
सर्वत्र च शरीरेऽपि, सुखं तस्य सदा भवेत्॥

जिस मनुष्य को **स्वर-ज्ञान** है, उसके चरणों के नीचे लक्ष्मी है और उसे सदा शारीरिक सुख प्राप्त होता है। तथा वह जहाँ जाए, वहाँ उसे सुख मिलता है।

प्रणवः सर्व-वेदानां, ब्राह्मणे भास्करो यथा।
मृत्यु-लोके तथा पूज्यः, स्वर-ज्ञानी पुमानपि॥

समस्त वेदों में जैसे **प्रणव** (ॐ) और ब्राह्मणों में सूर्य पूजनीय है, उसी प्रकार मृत्यु-लोक में **स्वर-ज्ञानी** पुरुष पूजनीय है।

स्वर-ज्ञान बलादग्रे, निष्फलं कोटिधा भवेत्।
इह लोके परत्रापि, स्वर-ज्ञानी बली सदा॥

स्वर-ज्ञान के बल के आगे कोटि प्रकार के भी बल निष्फल होते हैं क्योंकि **स्वर का ज्ञानी** इस लोक में और परलोक में सदैव बलवान् होता है।

* * *

सूक्ष्म वायु-परिवर्तन विज्ञान

(१) स्थूल वायु-परिवर्तन और सूक्ष्म वायु-परिवर्तन

हम सब यह जानते हैं अथवा बचपन से यह सुनते-देखते आए हैं कि जब कोई रोगी व्यक्ति किसी पर्वतीय स्थल या किसी स्वास्थ्य-प्रद स्थान (जहाँ पर सुन्दरतम प्राकृतिक दृश्य, स्वच्छन्द वायु है) पर जाता है, तो उसे स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त होता है।

प्रश्न यह उठता है कि यह स्वास्थ्य-लाभ क्यों होता है? और कैसे होता है? क्या सुन्दरतम प्राकृतिक दृश्य या स्वच्छन्द वायु से स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त होता है? यदि हाँ, तो प्रश्न उठता है कि क्या उस स्थान के निवासी कभी रुग्ण नहीं होते? वे भी बीमार होते हैं। फिर उस स्थान की सुन्दरता, स्वच्छन्द स्वच्छ वायु उन्हें आरोग्य प्रदान क्यों नहीं करती? इसके विपरीत देखा गया है कि तथा-कथित पर्वतीय या स्वास्थ्य-प्रद स्थलों के रुग्ण लोग जब हमारे स्थानों में आकर निवास करते हैं, तो उन्हें उसी प्रकार स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त होता है, जिस प्रकार हमें उनके स्थान पर स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त होता है।

अतएव मूल तथ्य किसी स्थान-विशेष का परिवर्तन न होकर **'वायु-परिवर्तन'** होना है। **वायु-परिवर्तन** का स्वास्थ्य पर हितकर और अहितकर दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है। सहसा **वायु-परिवर्तन** से अस्वस्थ शरीर स्वस्थ हो जाता है और शरीर स्वस्थ है, तो अस्वस्थ हो जाता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पर्यटन द्वारा होनेवाला उपर्युक्त **'वायु-परिवर्तन'** स्थूलतम क्रिया है। स्थूल की शक्ति परिमित और अस्थायी हुआ करती है। अतः परम करुणा-वरुणालय **भगवान् सदा-शिव** ने असमर्थ जीवों पर अनुकम्पा कर एक ऐसे विज्ञान

का भी उपदेश किया है, जिसमें स्थूल पर्यटन के द्वारा **स्थूल वायु-परिवर्तन** के स्थान पर, घर-बैठे **स्थूल वायु-परिवर्तन** से प्राप्त अस्थायी लाभ ही नहीं अपितु **'सूक्ष्म वायु-परिवर्तन'** के स्थायी लाभ भी हम प्राप्त कर सकते हैं।

*

(२) सदाशिव-प्रणीत—सूक्ष्म वायु-परिवर्तन-विज्ञान

सदाशिव-प्रणीत यह **'सूक्ष्म वायु-परिवर्तन-विज्ञान'** अत्यन्त सरल है। इसकी क्रियाएँ इतनी सहज हैं कि केवल एक बार ध्यान-पूर्वक सुन-पढ़ लेने पर समझ में आ सकती हैं और चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, हँसते-खेलते इनका अभ्यास कर असीम लाभ उठाया जा सकता है। **'सूक्ष्म-वायु-परिवर्तन विज्ञान'** का अभ्यास मात्र स्वास्थ्य में ही लाभ-कर नहीं होता अपितु लौकिक जीवन में निश्चित सफलता एवं देखते-देखते संसार के प्रत्येक क्षेत्र में महानतम प्रगति का जनक होता है। परिश्रम कुछ नहीं करना पड़ता। कहीं एकान्त में बैठकर आँख-नाक-कान बन्द करके ध्यानस्थ होने की आवश्यकता नहीं। कोई दण्ड-बैठक नहीं लगानी पड़ती। लम्बे-चौड़े व्यय-साध्य अर्चन अपेक्षित नहीं। किसी मन्त्र को जपने की आवश्यकता नहीं। किसी विशिष्ट औषधि को विशिष्ट-विधि से विशिष्ट-काल तक सेवन करने की आवश्यकता नहीं। आहार-विहार में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना पड़ता। दीर्घ यात्राओं में अर्थ और समय नष्ट नहीं होता। आवश्यकता है केवल थोड़े आत्म-विश्वास एवं निष्ठा की तथा सोते-जागते व उठते-बैठते इस विज्ञान को याद रखने की।

'सूक्ष्म वायु-परिवर्तन-विज्ञान' की चर्चा से पहले यह आवश्यक है कि इस विज्ञान के मूल-तत्त्व **'वायु'** एवं **'शरीरस्थ वायु के आधार-स्थलों'** को हम अच्छी तरह से समझ लें। कारण आधुनिक शरीर-विज्ञान (एनाटोमी) और शरीर-क्रिया-विज्ञान (फिजियोलाजी) की पहुँच अभी यहाँ तक नहीं हुई है।

*

(३) शरीरस्थ वायु के आधार-स्थल

हम जानते हैं कि मानव-शरीर का आधार-दण्ड— **'मेरु-दण्ड'** अस्थि-खण्डों के द्वारा निर्मित है। ये अस्थि-खण्ड एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, जो **'त्रिकास्थि'** से **'सुषुम्णा-शीर्ष'** तक दण्डाकार स्थित हैं। ये सब सछिद्र होने के कारण **त्रिकास्थि** से **प्राण-गुहा** (फोर्थ वेण्ट्रिकल) के निम्न प्रदेश तक एक पोली नाली-सी बनाते हैं। इस नाली में **जीवन-रस** (ब्रह्म-वारि—सेरेब्रो स्पाइनल फ्लुइड) भरा हुआ है। यह **ब्रह्म-वारि** (जीवन-रस) एक पीताभ द्रव पदार्थ है एवं जीवन की समाप्ति के प्रथम क्षण में ही शुष्क होकर अन्तर्हित हो जाता है। स्थूल शरीर-विज्ञान (एनाटोमी) और शरीर-क्रिया-विज्ञान (फिजियोलाजी) का ज्ञान यहीं तक सीमित है, इसके आगे नहीं बढ़ता।

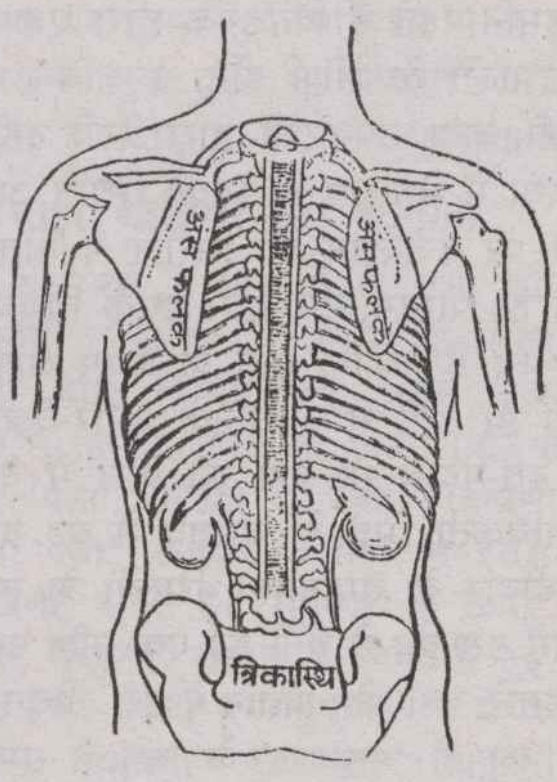

मेरु-दण्ड : जीवन-रस से निर्मित नलिका

उक्त चित्र में **'मेरु-अस्थि'** के मध्य में गहरी रेखाओं से **'मेरु-दण्ड'** की पोल दिखाई गई है और उसके मध्य हलके रेखा-जाल से उक्त **जीवन-रस** द्वारा बनी हुई झिल्ली से प्रस्तुत नलिका। यही नलिका हमारे **योग-विज्ञान का 'मेरु-दण्ड'** है, इस बात को हमें बराबर याद रखना चाहिए। जहाँ भी **'मेरु-दण्ड'** का नाम आए, वहाँ **अस्थि-निर्मित पृष्ठ-वंश** को न समझ कर इस **जीवन-रस-निर्मित नलिका** को ही समझना चाहिए।

पीले रङ्ग का **'ब्रह्म-वारि'** द्रव पदार्थ वास्तव में सूक्ष्म परमाणुओं का संग्रह है। ये सूक्ष्म परमाणु **मेरु-दण्ड** के पोले भाग में इस प्रकार प्रवाहमान रहते हैं कि इनके द्वारा एक झिल्ली-सी बन जाती है। इस झिल्ली के शीर्ण होने से जीवन समाप्त हो जाता है। यह झिल्ली बाह्य उपकरणों द्वारा देखी नहीं जा सकती है। जीवित अवस्था में **मेरु-दण्ड** में इसकी स्थिति अदृश्य है। बाहर आकर्षित करने पर इंजेक्शन की सिरींज में पीताभ द्रव-रूप में यह प्राप्त होता है। पोस्टमार्स्टम द्वारा इसके विषय में ज्ञान प्राप्त करना भी असम्भव है क्योंकि मृत्यु के प्रथम क्षण में ही यह अन्तर्हित हो जाता है। इसी से आधुनिक शरीर-वैज्ञानिक की कल्पना है कि यह द्रव-पदार्थ **मेरु-दण्ड** की पोल में वैसे ही भरा हुआ है। पर वास्तविकता भिन्न है। वास्तव में यह द्रव **मेरु-दण्ड** की छिद्र-नाल की दीवार के समानान्तर झिल्ली के रूप में प्रवहमान रहता है, जिससे इस द्रव से बनी हुई एक और नाल भीतर प्रस्तुत हो जाती है। हमारे यहाँ **योग-विज्ञान** में इस जीवन-रस की झिल्ली से प्रस्तुत नाल को ही **'मेरु-दण्ड'** के नाम से सम्बोधित किया गया है; न कि स्थूल अस्थि-खण्डों से निर्मित पृष्ठ-वंश को।

*

(४) मेरु-दण्ड की नलिका के भीतर की तीन नलिकाएँ

१ इड़ा, २ पिङ्गला और ३ सुषुम्णा

मेरु-दण्ड जिन सजीव परमाणुओं (सेल्स) के द्रव द्वारा निर्मित है, उनसे सूक्ष्म-तर परमाणुओं द्वारा इस **मेरु-दण्ड** की नलिका के भीतर तीन नलिकाएँ और हैं। इन तीनों नलिकाओं के नाम क्रमशः — (१) **'इड़ा'**, (२) **'पिङ्गला'** और (३) **'सुषुम्णा'** हैं। **'इड़ा'** का ऊर्ध्व-मुख वाम नासा-रन्ध्र की ओर खुलता है। **'पिङ्गला'** का दक्षिण नासा-रन्ध्र में एवं **'सुषुम्णा'** सीधी ऊपर **सहस्रार** तक जाती है। **'इड़ा'** एवं **'पिङ्गला'** वाम एवं दक्षिण नासा-रन्ध्र से प्रारम्भ होकर नीचे सीधे नहीं जातीं, अपितु **'सुषुम्णा'** के आस-पास

लिपटी हुई अवस्था में जाती हैं।

'सुषुम्णा' बिल्कुल सीधी नीचे से ऊपर तक जाती है। **इड़ा** और **पिङ्गला** के **सुषुम्णा** पर लिपटने के परिणाम में ये **सुषुम्णा** पर छः स्थानों पर आपस में एक दूसरे से विपरीत जाती हैं (एक दूसरे को क्रास करती हैं) देखिए, चित्र— **'सुषुम्णा-पथ'।**

वज्रा नाड़ी, चित्रिणी और षट्-चक्र

जिन प्रवहमान सूक्ष्म-तर परमाणुओं से उक्त तीन नाड़ियों (नलिकाओं) का निर्माण होता है, उनसे भी सूक्ष्म वैसे ही प्रवहमान परमाणुओं द्वारा निर्मित एक सबसे सूक्ष्म नलिका **'सुषुम्णा'** के मध्य में है। इस नलिका को **'वज्रा' (वज्रिणी)** के नाम से पुकारा जाता है। **'वज्रा'** नलिका को **'वज्रा' (वज्रिणी)** के नाम से पुकारा जाता है। **'वज्रा'** नलिका के मध्य में इससे भी सूक्ष्म नाड़ी है, जिसे **'चित्रिणी'** कहते हैं। **'सुषुम्णा'** के ऊपर जिन-जिन स्थलों पर **'इड़ा'** और **'पिङ्गला'** आपस में लिपटती हुई एक दूसरे को काटती हैं, ठीक इन्हीं स्थलों पर **'सुषुम्णा'** के मध्य-स्थित इस सूक्ष्म-तम नलिका— **'चित्रिणी'** के भीतर अद्भुत **पद्माकार 'षट-चक्र'** अवस्थित हैं। ये **चक्र** वास्तव में क्या हैं, यह वाणी-गम्य विषय नहीं है। **'चित्रिणी'** की सूक्ष्मता ही कल्पनातीत है। अनुभवी साधकों के शब्दों में हम इन्हें **'चक्र'** या **'पद्म'** ही कह सकते हैं। ये पद्म **'मूलाधार'** में चतुर्दल, **'स्वाधिष्ठान'** में षड्-दल, **'मणिपुर'** में दश-दल, **'अनाहत'** में द्वादश-दल, **'विशुद्ध'** में षोडश-दल और **'आज्ञा-चक्र'** में द्वि-दल जैसे अनुभूति में आते हैं। ये सभी पद्म अधो-मुख हैं।

चित्रिणी के मध्य में स्थित इन **अधो-मुख पद्मों** को भेदते हुए एक सबसे सूक्ष्म नलिका और है, जिसे **'ब्रह्म-नाड़ी'** कहते हैं। इसकी स्थिति को समझने के लिए, देखिए चित्र **'सुषुम्णा-पथ'।**

*

(५) गौण प्राण-वायु एवम् मुख्य प्राण-वायु

शरीरस्थ वायु के आधार-स्थल— **मेरु-दण्ड, इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, वज्रा, चित्रिणी, ब्रह्म-नाड़ी** एवं **षट्-चक्रों** की वास्तविक

स्थिति जानने के बाद **'वायु-तत्त्व** के सम्बन्ध में अपने **योग-विज्ञान** के विचारों को जानना आवश्यक है।

विश्व में जो कुछ भी दृश्यादृश्य पदार्थ हैं, सबकी तीन अवस्थाएँ हैं— (१) **स्थूल,** (२) **सूक्ष्म** और (३) **कारण।** इस तथ्य को पदार्थों की जाँच करते हुए अब आधुनिक भौतिक विज्ञान भी भली-भाँति जान गया है।

इस प्रकार **'वायु'** के भी तीन रूप हैं। हम नाक से जो **श्वास** ग्रहण करते है, उसे भौतिक विज्ञान ओषजन (आक्सीजन) के नाम से जानता है। वह वायु का स्थूल रूप है। **योग-विज्ञान** में जिसे **'प्राण-वायु'** कहते हैं, वह ओषजन से नितान्त भिन्न एवं सूक्ष्मतर है। जिस प्रकार **स्थूल-वायु** में आक्सीजन व्याप्त है, उसी प्रकार आक्सीजन में उससे **सूक्ष्म प्राण-वायु** व्याप्त है। यह स्थूल पार्थिव साधनों से अज्ञेय है।

हम जब श्वास ग्रहण करते हैं, तो आक्सीजन-युक्त वायु हमारे फेफड़ों में जाती है, किन्तु **आज्ञा-चक्र** के उर्ध्व-स्थित **'ललना'** नामक गुप्त चक्र के प्रभाव से आक्सीजन में से **प्राण-वायु** अलग होकर **इड़ा** या **पिङ्गला** में प्रवेश करती है। उसके **इड़ा** या **पिङ्गला** में प्रवेश करने का समय निर्धारित है। वायु का तीसरा सूक्ष्मतम **'कारण'-रूप— मूलाधार** में अवस्थित है।

संक्षेप में, **योग-विज्ञान** के अनुसार **प्राण-वायु** दो प्रकार की है— (१) **गौण,** (२) **मुख्य। गौण प्राण-वायु** वह है, जिसे हम श्वासोच्छ्वास-द्वारा ग्रहण और त्याग करते हैं। यह चर है। **मुख्य प्राण-वायु** वह है, जो **मेरु-दण्ड** में स्थित **सुषुम्णा** के मध्यवर्ती **चित्रिणी** के अन्तर्गत **अनाहत-केन्द्र** में सदा निवास करती है। इस सूक्ष्मतर **मुख्य प्राण-वायु** का ही परिणाम **गौण प्राण-वायु** है। इसी **मुख्य प्राण-वायु** के दश अन्य परिणाम हैं, जो सम्पूर्ण स्थूल-देह का सञ्चालन एवं स्थापन करते हैं। वे है— (१) **प्राण,** (२) **अपान,** (३) **उदान,** (४) **व्यान,** (५) **समान,** (६) **नाग,** (७) **कूर्म,** (८) **कृकर,** (९) **देवदत्त** और (१०) **धनञ्जय।** इनमें पहले पाँच मुख्य हैं, बाद के पाँच उनके सहायक गौण हैं। इन पाँचों मुख्य परिणामों के कार्य निम्न प्रकार हैं—

(१) **प्राण-वायु** (मुख्य प्राण-वायु का मुख्य परिणाम)— यह बाह्य स्थूल हृदय में स्थित रहकर देह के ऊर्ध्व भाग में प्रवहमान है। इसी की विभिन्न क्रिया-बोधक अवस्थाएँ निम्नाङ्कित भिन्न-भिन्न वायु के नाम से कही जाती हैं। ध्यान रहे, **मुख्य प्राण** यह नहीं है। यह तो **अनाहत-केन्द्र** में स्थित **सूक्ष्मतर प्राण-वायु** का परिणाम है।

उक्त **प्राण-वायु** का प्रत्यक्ष कार्य हमारी श्वासोच्छ्वास-क्रिया है। इसका अप्रत्यक्ष कार्य आहारादि वस्तुओं को आमाशय में पहुँचाना, हृदय-गति स्थिर रखकर हृदय में रक्त-सञ्चार करवाना इत्यादि नाभि से ऊपर की सम्पूर्ण क्रिया सञ्चालित करना है।

(२) **अपान-वायु**— निम्न-देह में प्रवाहित गुह्य में स्थित प्राण को अपान नाम से पुकारा जाता है। नाभि से निम्न अङ्गों की सम्पूर्ण क्रियाएँ तथा मल, मूत्र, शुक्र, शोणित, गर्भ आदि का त्याग करवाना इसका कार्य है।

(३) **समान-वायु**— **प्राण** और **अपान** के मिलन-केन्द्र नाभि में अवस्थित होकर दोनों की क्रियाओं को संयमित रखना इसका कार्य है। यह आमाशय, पक्वाशय आदि में विचरण-पूर्वक **प्राण** और **अपान** में समता (सामञ्जस्य) रखती है। इसी से इसे **'समान'** के नाम से पुकारा जाता है।

(४) **उदान-वायु**— वेदों के उदात्तादि स्वर— उद्गीथ या नाद को वैखरी स्वर द्वारा (कण्ठ-यन्त्र द्वारा) स्फुरण करने के कारण इसका नाम **'उदान'** है। यह कण्ठ में स्थित है।

(५) **व्यान-वायु**— सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहकर रस-रक्तादि के सञ्चालन-पूर्वक यह चर्म (स्वेद) निर्गमनादि क्रिया को सम्पन्न करती है।

प्राण-वायु के ये ही पाँच प्रधान क्रियानुरूप भेद हैं। इन्हीं क्रियाओं की सहायक क्रियाएँ सम्पन्न करनेवाले पाँच भेद और हैं— (६) **नाग-वायु**— उदान, (७) **कूर्म**— उन्मीलन, संकोचन, (८) **कृकर**— क्षुधा, तृषा, (९) **देवदत्त**— जृम्भन, निद्रा, तन्द्रा और (१०) **धनञ्जय**— हिक्का और पोषणादि क्रिया।

*

(६) इड़ा-पिङ्गला का प्रवाह एवं सात वारों का नाम-कारण

उपर्युक्त विवरण के अनुसार **'मेरु-दण्ड'** के मध्य तीन सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं— **सुषुम्णा, इड़ा** और **पिङ्गला। सुषुम्णा** से संलग्न **इड़ा वाम नासा-रन्ध्र** में खुलती है और **पिङ्गला दक्षिण नासा-रन्ध्र** में। इसी से वाम नासा-रन्ध्र या बाँएँ नथुने से बहनेवाले श्वास को **इड़ा का प्रवाह** कहा जाता है और दक्षिण नासा-रन्ध्र या दाएँ नथुने से बहनेवाले श्वास को **पिङ्गला का प्रवाह। इड़ा के प्रवाह** को **'चन्द्र-स्वर'** और **पिङ्गला के प्रवाह** को **'सूर्य-स्वर'** कहते हैं। **इड़ा चन्द्र-मयी, पिङ्गला— सूर्य-मयी** और **सुषुम्णा—अग्नि-मयी** है।

इड़ा और **पिङ्गला का प्रवाह** क्रमशः एक निश्चित समय तक होता है। दूसरे शब्दों में श्वास एक निश्चित समय तक बाँएँ नथुने से चलता है और एक निश्चित समय तक दाँएँ नथुने से। इस निश्चित समय को एक **'होरा'** (ऑवर-घण्टा) कहते हैं। एक दिन-रात्रि **२४ होराओं** में विभक्त है अर्थात एक दिन-रात्रि में चौबीस बार श्वास बदलता है। यह प्राकृतिक नियम है। स्वस्थ शरीर में इसमें कभी व्यतिक्रम नहीं होता। इसी को देखते हुए हमारे पूर्वजों ने दिन-रात्रि को चौबीस भागों में विभक्त किया है। इन चौबीस होराओं पर दूर-वर्ती क्रम से— **१ शनि, २ वृहस्पति, ३ मङ्गल, ४ सूर्य, ५ शुक्र, ६ बुध** और फिर **७ चन्द्रमा** ग्रहों का प्रभाव पड़ता है।

प्रलय के उपरान्त जब **प्रथम सूर्योदय** हुआ, तो **प्रथम 'होरा' सूर्य से प्रभावित** हुआ। इससे प्रथम दिन का नाम **'सूर्य-वार'** या **'रवि-वार'** रखा गया। अब रविवार का **दूसरा होरा** सूर्य के बाद के ग्रह 'शुक्र' का हुआ। तीसरा उसके बाद के ग्रह 'बुध' का, चौथा 'चन्द्रमा' का, पाँचवाँ 'शनि' का, छठा उसके बाद 'वृहस्पति' का, सातवाँ 'मङ्गल' का, आठवाँ फिर 'सूर्य' का, नवाँ 'शुक्र' का, १०वाँ 'बुध' का, ११ वाँ 'चन्द्र' का, १२ वाँ 'शनि' का, १३वाँ 'वृहस्पति' का, १४वाँ 'मङ्गल' का, १५वाँ 'सूर्य' का, १६वाँ 'शुक्र' का, १७वाँ 'बुध' का, १८वाँ 'चन्द्र' का, १९वाँ 'शनि' का, २०वाँ 'वृहस्पति' का, २१वाँ 'मङ्गल' का, २२वाँ

'सूर्य' का, २३वाँ 'शुक्र' का और २४वाँ **'बुध' का होरा** समाप्त होकर **'रविवार' का दिन-रात** समाप्त हुआ। अब फिर जब सूर्योदय हुआ, तो **२५वाँ होरा 'चन्द्र'** का था। अतः **दूसरे दिन का नाम 'चन्द्र-वार'** या **'सोम-वार'** रखा गया। **'चन्द्र-वार का दिन-रात** समाप्त होने पर, पुनः सूर्योदय होने पर वृहस्पति के बाद **'मङ्गल' ग्रह का होरा** प्रारम्भ होता है। अतः तीसरे दिन का नाम **'मङ्गल-वार'** रखा गया। इसी प्रकार मङ्गल-वार के २४ होराओं में **२४वाँ होरा शुक्र** का पड़ता है। अतः चौथे दिन सूर्योदय के समय **बुध का होरा** था, इसलिए उसका **'बुध-वार'** नाम हुआ। यों ही बुधवार का अन्त **'शनि' के होरा** से होता है। अतः पाँचवाँ सूर्योदय **'बृहस्पतिवार'** के होरा में होने से ५वाँ वार **बृहस्पति-वार** या **गुरु-वार** कहलाया। गुरु-वार के २४ होराओं में २४वाँ होरा **'सूर्य' का होरा** पर होने से छठा सूर्योदय **'शुक्र' के होरा** में हुआ। अतः वह **शुक्र-वार** हुआ। शुक्रवार का २४वाँ होरा 'चन्द्र' का पड़ता है। अतः ७वाँ सूर्योदय **शनि के होरा** में होने से उस दिन का नाम **'शनिवार'** पड़ा। शनिवार का २४वाँ होरा 'मङ्गल' का पड़ता है। अतः ८वाँ सूर्योदय पुनः **'सूर्य' के होरा** में ही हुआ। यही **सातों वारों के नाम-कारण का रहस्य** है। इस प्रकार **वारों के नाम** हमारे यहाँ अललटप्प ही नहीं हैं, अपितु पूर्ण-रूपेण वैज्ञानिक हैं।

हाँ, तो हम लोग चर्चा कर रहे थे कि **इड़ा** और **पिङ्गला का प्रवाह** क्रमशः एक निश्चित **समय (होरा)** तक होता है। हमारे पूर्वजों के अनुसार **चान्द्र तिथियों (प्रतिपदा, द्वितीया—पूर्णिमा)** में **इड़ा** और **पिङ्गला का प्रवाह** प्रकृति द्वारा निश्चित है। **शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ करके तीन-तीन दिन क्रम से चन्द्र और सूर्य-स्वर प्रातःकाल प्रवहमान रहते हैं।** अधिक स्पष्ट विवरण इस प्रकार है—

शुक्ल-पक्ष की तिथि	**कृष्ण-पक्ष की तिथि**
१-२-३ चन्द्र	१-२-३ सूर्य
४-५-६ सूर्य	४-५-६ चन्द्र
७-८-९ चन्द्र	७-८-९ सूर्य
१०-११-१२ सूर्य	१०-११-१२ चन्द्र

१३-१४ पूर्णिमा-चन्द्र १३-१४ अमावास्या—सूर्य

कुछ विद्वानों के अनुसार **स्त्री-शरीर** में इसके विपरीत क्रम होता है अर्थात् स्त्री-शरीर में **शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा** का प्रारम्भ **सूर्य-स्वर** से होता है।

स्त्री-शरीर में **शुक्ल-पक्ष प्रतिपदा** का प्रातः **सूर्य-स्वर** से प्रारम्भ होता हो या **चन्द्र-स्वर** से, इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। मूल समझने की बात यह है कि इन-इन तिथियों में इस-इस **स्वर का प्रवाह** प्रातःकाल होता है। अब प्रश्न उठता है कि प्रातःकाल क्या है? कई लेखकों ने अनुभव-हीनता के कारण लिखा है कि **शुक्ल प्रतिपदा** को जगने पर **चन्द्र-स्वर** होगा। कुछ सूर्योदय के समय से **स्वर-गणना** करते हैं, किन्तु, दोनों बातें कल्पनाएँ मात्र हैं। निश्चित **'स्वर-काल-चक्र'** इस प्रकार है—

'स्वर-काल-चक्र' : शुक्ल-पक्ष

प्रतिपदा— ठीक सूर्योदय से **चन्द्र-स्वर** का प्रारम्भ।

द्वितीया— सूर्योदय से २० मिनट पहिले **चन्द्र-स्वर** का प्रारम्भ।

तृतीया— सूर्योदय से ४० मिनट पहिले **चन्द्र-स्वर** का प्रारम्भ।

चतुर्थी— सूर्योदय से ६० मिनट = १ घण्टा पहिले **चन्द्र-स्वर** प्रारम्भ होकर ठीक सूर्योदय पर बदल कर **सूर्य-स्वर** का प्रारम्भ।

पञ्चमी— सूर्योदय से २० मिनट पहिले **सूर्य-स्वर** का प्रारम्भ।

षष्ठी— सूर्योदय से ४० मिनट पहिले **सूर्य-स्वर** का प्रारम्भ।

सप्तमी— सूर्योदय से ६० मिनट = १ घण्टा पहिले **सूर्य-स्वर** प्रारम्भ होकर ठीक सूर्योदय पर बदल कर **चन्द्र-स्वर** का प्रारम्भ।

अष्टमी— सूर्योदय से २० मिनट पहिले **चन्द्र-स्वर** का प्रारम्भ।

नवमी— सूर्योदय से ४० मिनट पहिले **चन्द्र-स्वर** का प्राम्भ।

दशमी— सूर्योदय से ६० मिनट = १ घण्टा पहिले **चन्द्र-स्वर** प्रारम्भ होकर ठीक सूर्योदय पर बदल कर **सूर्य-स्वर** का प्रारम्भ।

एकादशी— सूर्योदय से २० मिनट पहिले **सूर्य-स्वर** का प्रारम्भ।
द्वादशी— सूर्योदय से ४० मिनट पहिले **सूर्य-स्वर** का प्रारम्भ।
त्रयोदशी— सूर्योदय से ६० मिनट = १ घण्टा पहिले **सूर्य-स्वर** का प्रारम्भ होकर ठीक सूर्योदय पर **चन्द्र-स्वर**।
चतुर्दशी— सूर्योदय से २० मिनट पहिले **चन्द्र-स्वर** का प्रारम्भ।
पूर्णिमा— सूर्योदय से ४० मिनट पहिले **चन्द्र-स्वर** का प्रारम्भ।

'स्वर-काल-चक्र' : कृष्ण पक्ष

प्रतिपदा— सूर्योदय से ६० मिनट = १ घण्टा पहिले **चन्द्र-स्वर** प्रारम्भ होकर ठीक सूर्योदय पर **सूर्य-स्वर** प्रारम्भ।

और इसी प्रकार आगे। सूर्योदय के ठीक समय को पञ्चाङ्ग द्वारा जान सकते हैं।

यह **प्राकृतिक स्वर-प्रवाह का क्रम** है। इसमें गड़बड़ी होने से ही स्वास्थ्य में गड़बड़ी हुआ करती है। यदि यह क्रम ठीक रखा जा सके, तो मनुष्य कभी अस्वस्थ ही न हो।

*

(७) सुषुम्णा-प्रवाह और लौकिक कार्यों का निषेध

जब **इड़ा-प्रवाह**— **'चन्द्र-स्वर'** का अपना एक होरा ('घण्टा') समाप्त होकर **पिङ्गला-प्रवाह 'सूर्य-स्वर'** प्रारम्भ होता है अथवा जब **'सूर्य-स्वर'** बदलकर **'चन्द्र-स्वर' का प्रवाह** प्रारम्भ होता है, इस परिवर्तन के सन्धि-काल में ४ मिनट के लिए **'सुषुम्णा' का प्रवाह** होता है। **सुषुम्णा का प्रवाह** स्थूल रूप में तब समझा जाता है, जब क्षण-भर में वाम, क्षण-भर में दक्षिण नासा-पुट से श्वास-प्रवाह आता हुआ ज्ञात हो। यह ४ मिनट का समय बड़ा कठिन है। संसार की जितनी दुर्घटनाएँ छोटी-बड़ी होती हैं, इसी **सुषुम्णा-प्रवाह** के समय हुआ करती हैं। स्वाभाविक या आकस्मिक किसी भी प्रकार की मृत्यु से पूर्व **सुषुम्णा** प्रवाहित होने लगती है। **सुषुम्णा** के प्रवाहित हुए बिना कोई विघटनकारी घटना घट ही नहीं सकती। इसी से कहा गया है कि **सुषुम्णा-प्रवाह** के समय कोई भी लौकिक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। **सुषुम्णा-प्रवाह** के समय एक-मात्र **माँ का ध्यान** ही श्रेयस्कर है।

संहार-मयी सुषुम्णा ही मोक्ष-दायिनी!

पिङ्गला-उत्पादिका है, **इड़ा**-पालिका और **सुषुम्णा**-संहारिका। संहार का अर्थ मोक्ष या मुक्ति है। उत्पत्ति और लय के संसार-चक्र से मुक्ति 'लय' होने पर ही सम्भव है। उत्पत्ति पर तो पालन और संहार की क्रियाएँ बिना बुलाए आएँगी। एकमात्र संहार—**लय** ही ऐसी अवस्था है कि यदि परिपूर्ण हो जाए— पार्थिव लय (मृत्यु) न होकर **ब्रह्म-लय** हो जाए, तो उत्पत्ति-पालन-लय का क्रम समाप्त हो सकता है। इसी से **संहार-मयी सुषुम्णा** ही **मोक्ष-दायिनी** हो सकती है।

मोक्ष-दायिनी सुषुम्णा जिस समय प्रवाहित हो, उस समय उत्पत्ति या पोषण-सम्बन्धी कोई कार्य (दूसरे शब्दों में संसार का कोई भी कार्य) कभी सफल नहीं हो सकता।

अतः **पिङ्गला के प्रवाह** में— **सूर्य-स्वर बहने के समय** सभी उत्पादनात्मक कर्म अथवा कठोर कर्म; **इड़ा के प्रवाह** में— **चन्द्र-स्वर बहने के समय** सभी सौम्य कर्म (सांसारिक) और **सुषुम्णा के प्रवाह** में केवल माँ का चिन्तन अथवा योगाभ्यास करना सफलता प्रदान करता है। **इड़ा** और **पिङ्गला** के समय कौन-कौन से सांसारिक कर्म किए जाने चाहिए, इनका विवरण पीछे दिया जा चुका है।

*

(८) स्वस्थ शरीर के परिप्रेक्ष्य में इड़ा-पिङ्गला-प्रवाह

इड़ा और **पिङ्गला-प्रवाह** के समय जो कर्म किए जाने चाहिए, उनके प्रति लिखा गया है कि भोजन और मल-त्याग **सूर्य-स्वर** में करना चाहिए और जल-ग्रहण तथा प्रस्राव **चन्द्र-स्वर** में। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भोजन के साथ किया हुआ जल-पान अथवा मल-त्याग के साथ किया गया प्रस्राव **सूर्य-स्वर** में ही होगा। हाँ, अतिरिक्त जल-ग्रहण या अतिरिक्त प्रस्राव सर्वदा **चन्द्र-स्वर** में ही होना चाहिए।

सूर्य-स्वर में मल-त्याग करने से उत्पादक तेज (वात) की गति मल-क्रिया को गति देगी और सम्यक् मल-त्याग हो जाएगा। इसी

प्रकार **सूर्य-स्वर** में भोजन करने से धातु-क्रिया गति-शील होकर सम्यक् धातु-निर्माण होता रहेगा। धातु और मल-क्रिया के सम होने से दोषों का और अग्नि का सम होना स्वाभाविक होगा। फलतः **'प्रसन्नात्मेन्द्रिय-मयः'** की उपलब्धि होकर शरीर स्वस्थ हो जाएगा—

सम-दोषः समाग्निश्च, सम-धातु-मल-क्रिया।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय-मनः, स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

इसके विपरीत **चन्द्र-स्वर** (पोषक तेज : कफ : स्थायित्व) की उपस्थिति में किया हुआ भोजन आमाशय में स्थायी पड़ा रहेगा। धातु-निर्माण-क्रिया स्तब्ध होगी। परिणाम में मन्दाग्नि बनेगी। इसी प्रकार **चन्द्र-स्वर** स्थायित्व के समय मल-त्याग के परिणाम से सम्यक् गति प्राप्त न होने से परिपूर्ण शुद्धि का अभाव होगा। फलतः दोष, धातु और मल-क्रिया तथा अग्नि— चारों असम होकर रोगोत्पत्ति के कारण बनेंगे। इसलिए मलावरोध के रोगी को कहा जाता है कि शौच के समय बाँएँ पैर पर जोर देकर बाँयीं ओर झुककर बैठो। शौच साफ होने लगेगा। कारण **सूर्य-स्वर** का परिणाम ही है।

*

(६) सूर्य-स्वर और चन्द्र-स्वर का परिवर्तन

अब यहाँ यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि यह सब कैसे सम्भव है? **सूर्य-स्वर** और **चन्द्र-स्वर** के चक्कर में क्या तीन दिन दस बजे भोजन किया जाए, तो तीन-दिन ग्यारह बजे! अथवा कभी दो बजे प्रस्राव, तो कभी तीन बजे से पहिले नहीं। इससे तो शरीर के स्वाभाविक वेगों पर रोक लगेगी, जिसका परिणाम भयानक रोगों का आमन्त्रण होगा, न कि स्वस्थ शरीर।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि **सूर्य** या **चन्द्र-स्वर** हम अपनी इच्छानुसार चला सकते हैं। अतः **सूर्य-स्वर** एवं **चन्द्र-स्वर** में किए जानेवाले कार्यों को सदैव याद रखते हुए हमें अपने सभी कार्य करने हैं। यदि कभी आवश्यक **स्वर** चल न रहा हो, तो कार्य

अथवा शारीरिक वेग को नहीं रोकना है अपितु आवश्यक **'स्वर-परिवर्तन'** करना चाहिए। **'स्वर-परिवर्तन'** हेतु थोड़े अभ्यास की आवश्यकता है।

*

(१०) स्वर-परिवर्तन हेतु नाड़ी-शोधन का महत्त्व

दिन में चार बार प्रातः, मध्याह्न, सायं और निशीथ में वाम नासा से भरपूर वायु ग्रहण कर बिना रोके दक्षिण नासा से क्रमशः निसृत करना और तत्काल दक्षिण-नासा से उसी प्रकार भरपूर पूरक बिना रुके करके बिना रुके ही वाम-नासा से क्रमशः रेचन करना— यह एक क्रिया हुई। इस प्रकार ८०-८० बार करना। छः मास के अभ्यास से **नाड़ी-शोधन** हो जाता है। शरीर स्फूर्ति से भर जाता है। भूख खुल जाती है। चलते हुए उड़ने को मन करता है। स्वाभाविक प्रसन्नता बढ़ जाती है। नाड़ी शुद्ध हो जाती है। **स्वर-परिवर्तन** बहुत आसान हो जाता है। **इच्छा-बल** से जब चाहें, **सूर्य-स्वर** और जब चाहें **चन्द्र-स्वर** चलाया जा सकता है। **स्वर-परिवर्तन** की अन्य विधियाँ पीछे दी गई हैं।

नाड़ी-शोधन का उक्त अभ्यास स्वस्थ शरीर से ही करना चाहिए। अस्वस्थता की स्थिति में उक्त अभ्यास नहीं करना चाहिए। स्त्रियों के लिए गर्भावस्था में **नाड़ी-शोधन** का अभ्यास हितकर नहीं है।

*

(११) रोग-निराकरण एवं शरीर-विषयक आरोग्य-प्रकरण

सूक्ष्म-वायु-परिवर्तन विज्ञान एक प्रकार का **धारणा-योग** है। **अष्टाङ्ग योग-विज्ञान** में **'धारणा'— यम, नियम, आसन, प्रत्याहार** तक के सोपान पार कर चुकने पर ही आरम्भ हो पाती है। **यम** और **नियम** की दृढ़ता तो सर्वत्र ही अनिवार्य है। किन्तु, **प्राणायाम** और **प्रत्याहार** को पार करते हुए यदि साधक किन्हीं योग-सिद्ध महा-पुरुष के संरक्षण में कार्य नहीं कर रहा है, तो जैसा आमतौर पर देखा जाता है, पूरा जीवन ही गुजर जाता है और एक **प्राणायाम** भी सम्यक् प्रकारेण नहीं हो पाता।

प्राणायाम की तीन अवस्थाएँ शास्त्रकारों ने बताई हैं। **निकृष्ट प्राणायाम** में **पूरक** और **कुम्भक** के साथ ही शरीर के प्रत्येक रोम-कूप से प्रस्वेद निकलना आरम्भ हो जाता है। **प्राणायाम** की मध्यम अवस्था में **प्राणायाम** के साथ सम्पूर्ण शरीर कदली-दल की तरह प्रकम्पित, चक्राकार परिभ्रमित अथवा मण्डूक-वत् उचकना प्रारम्भ हो जाता है एवं **प्राणायाम** की उत्तम अवस्था में **प्राणायाम** के साथ ही साधक भूमि त्याग कर देता है।

सम्यक् मार्ग-निर्देशन के अभाव में जन-साधारण इन अवस्थाओं की अनुभूति नहीं कर सकते। उन्हीं जन-साधारण के निमित्त पशुपति ने इस मध्यम मार्ग का उपदेश किया है। इसमें प्रवेश पाने से पूर्व निम्न योग्यताओं का होना आवश्यक है—

१- दृढ़ विश्वास एवं **अनन्य निष्ठा। २- सच्ची आस्तिकता** एवं **आर्ष ग्रन्थों पर अटूट आस्था। ३- नाड़ी-त्रितय, पञ्च-प्राण, षट्-चक्र, नव-चक्र** और **आधारों का सम्यक् ज्ञान। ४- स्थूल** और **सूक्ष्म वायु का भेद** एवं **कारण-वायु की अवस्थिति का ज्ञान। ५- नाड़ी-शोधन** एवं **किञ्चित् प्राणायाम का अभ्यास। ६- तत्त्व-ज्ञान।**

इनमें से पञ्चम योग्यता **नाड़ी-शोधन** का पूर्वाभ्यास हितकर होता है। देखने में जैसा आया है, अस्सी प्रतिशत रोग नाड़ियाँ शुद्ध होते-होते निवृत हो जाते हैं। शेष बीस प्रतिशत में से पन्द्रह प्रतिशत **तत्त्व-ज्ञान** के अभ्यास की भेंट हो जाते हैं। पाँच प्रतिशत रोग ही भले ऐसे रह जाएँ, जिनके निमित्त **सूक्ष्म-वायु-परिवर्तन** की धारणा की आवश्यकता पड़े। इसके उपरान्त तो रोगी, रोगी न रहकर चिकित्सक बन जाया करता है।

नाड़ी-शोधन एवं **तत्त्व-ज्ञान** के विषय में साधक-वृन्द बहुत जानते हैं। अथवा योग-सम्बन्धी किन्हीं भी पुस्तकों से उक्त ज्ञान को पा सकते हैं। **सूक्ष्म-वायु-परिवर्तन विज्ञान** में प्रवेश पाने के निमित्त सर्व-सामान्य **नाड़ी-शोधन** अनिवार्य है। **नाड़ी-शोधन** के निमित्त केवल दो, तीन अथवा चारों संध्याओं में **कुम्भक-रहित पूरक, रेचक का प्राण-नियमन** प्रत्येक स्वर से अस्सी बार कर लेना यथेष्ट होता है। इस शुद्ध-क्रिया से दो मास में **नाड़ी-शोधन** हो जाता है। विशेष अवस्थाओं में ६ मास तक का समय लगना भी सम्भव

है। ढाई मास में परिपूर्ण **नाड़ी-शोधन** होकर शरीर में एकदम स्फूर्ति का बोध होना प्रारम्भ होता है। उत्साह, स्फूर्ति, अधिक कार्य करने की उत्कण्ठा, परिश्रम से अक्लान्ति, उचित भूख और मलोत्सर्ग-क्रिया, शरीर का हल्का-फुल्का होना आदि लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। इन लक्षणों के होने पर समझ लेना चाहिए कि नाड़ियाँ शुद्ध हो चुकी हैं। इसके उपरान्त **सूक्ष्म वायु-परिवर्तन-विज्ञान** में प्रवेश पाने के निमित्त किञ्चित् **सबीज प्राणायाम का अभ्यास** एवं **तत्त्व-ज्ञान** की उपलब्धि करना चाहिए।

तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त **'पञ्च-तत्त्व-धारणा'** श्रेष्ठ मार्ग है। किन्तु, उसमें बिना **गुरु-कृपा** सफलता होती ही नहीं। यदि **कुम्भक का अभ्यास** दृढ़ कर लिया गया है, तो **षण्मुखी मुद्रा तत्त्वों के ज्ञान** का उत्तम साधन है। अथवा **वर्ण, आकार प्रभृति उपायों** से **तत्त्वों का ज्ञान** प्राप्त करने का अभ्यास कर लेना चाहिए। वहाँ तक अभ्यास हो जाने के बाद **आधारों का ज्ञान** आवश्यक है। शास्त्रकारों ने कहा है—

षट्-चक्रं षोडशाधारं, द्वि-लक्ष्यं व्योम-पञ्चकम्।
स्व-देहे यो न जानाति, कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः।।

'द्वि-लक्ष्य' एवं **'व्योम-पञ्चक'** का ज्ञान इसी विज्ञान में आवश्यक होता है। किन्तु, वह **हठ-योग-प्रदर्शित पद्धति** से भिन्न है। **'षट्-चक्र'** के विषय में पहले समझा चुके हैं, **गोरक्ष-पद्धति** में **'षोडशाधारों'** की धारणा के फल इस प्रकार कहे गए हैं—

पादांगुष्ठ स्थिर-दृष्टित्वं मूलाधारेऽग्नि-दीपनं।
गुह्याधारे काश-संकोचं वज्रोली-स्तम्भन-योग्या।।
उड्डियाने पैश्चिमाताने गुदं सङ्कोचयेद् भृशं।
मल-मूत्रश्च कृमिघ्नः तच्छष्ठं नाभिश्च मण्डलम्।।
चैतन्य-ध्याने नादोत्पत्तिः हृदये वायु-रोधनं।
हृद्-पद्मस्य विकासः स्यात् कण्ठे जालन्धरं तथा।
वायु - स्थैर्य - क्षुद्र-घण्ट्यां खेचर्यमृत-पानकं।
जिह्वा-मूले खेचरी-सिद्धिः जिह्वाधो सत्कविर्भवेत्।।

ऊर्ध्व-दन्तस्य मूले च, सर्व-रोग प्रशाम्यति।
नासिकाग्रे मन-स्थैर्य नासा-मूले ज्योति-दर्शनम्॥
भ्रू-मध्ये स्थिरा दृष्टिः सूर्याकाशे मनो लयः।
नेत्राधारे षोडशे चैव ज्योति-प्रत्यक्षतामियात्॥

अथवा **षोडशाधारों** की गणना इस प्रकार भी की जाती है—

अथवा मूल - स्वाधिष्ठं, मणिपूरमनाहतं।
विशुद्धाज्ञा विन्द्वर्द्धेन्दु-रोधिनी नाद-सम्मतम्॥
नादान्त शक्ति-व्यापिका, समनी रोधनी तथा।
ध्रुव - मण्डलमेते, स्याच्छोडशाधार-संज्ञकम्॥

किन्तु ये दोनों प्रकार के **षोडशाधार** प्रथम **हठ-योग** एवं द्वितीय **लय-योग** में ही काम आते हैं। **'सूक्ष्म-वायु-परिवर्तन-विज्ञान'** में षोडश के स्थान में **बत्तीस आधार** हैं। वे इस प्रकार हैं—

सहस्रारे गुरोश्चक्रे, आज्ञायां नेत्र-मण्डले,
नासिकायां तथा कर्णे, गण्डे वदन-गह्वरे।
कण्ठे फुक्फुसे पार्श्वे बाहौ हृदये तथैव च,
प्लीहायां यकृते वृक्के, लघ्वन्त्रे वृहदन्त्रके।
वस्त्यां मूत्राशये चैव, मलाशये उपस्थके,
(वस्त्यां गर्भाशये नार्या, बीजाशये तथापि वा)
ऊरौ जानौ च जङ्घायां, गुल्फे पादे तथैव च।
सर्वाङ्गाभ्यन्तरे बाह्ये, अग्रे पृष्ठे खमण्डले॥

(१) सहस्रार, (२) शत-दल गुरु-चक्र, (३) आज्ञा-चक्र, (४) नेत्र-मण्डल, (५) नासिका, (६) कर्ण, (७) गाल, (८) मुख-गह्वर (मुख-गह्वर में पाँच आधार हैं— १- दन्त-मूल, २- जिह्वाग्र, ३- तालु, ४- घण्टिका और ५- मुखाकाश), (९) कण्ठ, (१०) फुप्फुस (फेफड़े), (११) बगल, (१२) भुजाएँ, (१३) हृदय, (१४) तिल्ली, (१५) जिगर, (१६) गुर्दे, (१७) छोटी आँत, (१८) बड़ी आँत, (१९) पेडू (नारी-शरीर में इस आधार में गर्भाशय एवं बीजशय दो आधार अन्तर्हित हैं), (२०) मूत्राशय, (२१) मलाशय, (२२) जननेन्द्रि,

(२३) जाँघें, (२४) घुटने, (२५) पिंडली, (२६) टखने, (२७) पैर, (२८) सम्पूर्ण शरीर का अभ्यन्तर भाग (इसमें सप्त-धातु से सम्बन्धित सप्ताधार समन्वित हैं), (२९) बाह्याङ्ग, (३०) अग्र-भाग का आकाश, (३१) पृष्ठ-भाग का आकाश और (३२) सम्पूर्ण आकाश-मण्डल।

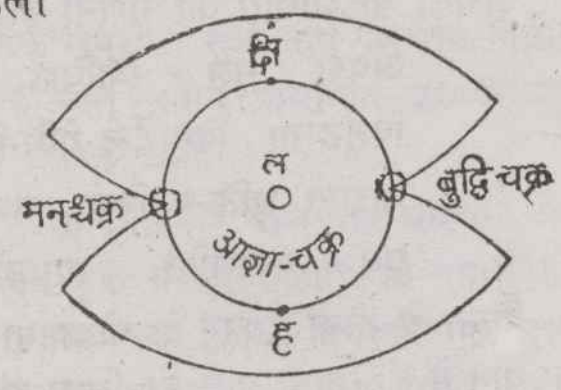

उक्त आधारों के ज्ञान के अतिरिक्त तृतीय आधार **'आज्ञा-चक्र'** को विशेष रूप से समझ लेना आवश्यक है क्योंकि इसी स्थान से **आज्ञा का प्रसरण** होता है, जिससे सृष्टि-लयात्मक विश्व का सञ्चालन होता है। रहस्य-मय **आज्ञा-चक्र,** जिससे हमारे विषय का घनिष्ठ सम्बन्ध है, द्वि-दलात्मक है, जैसा कि आगे चित्र में दिखाया गया है। इस चक्र के दोनों दलों के सम्मिलन-स्थल क्रमशः **'मनश्चक्र'** (मनः-केन्द्र) एवं **'बुद्धि-चक्र'** (विज्ञान-केन्द्र) हैं। इनमें **'मनश्चक्र'-षड्-दलात्मक चक्र** है। प्रत्येक दल क्रमशः **शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध** एवं पाँचों विषयों के समष्टि-भूत **स्वप्न** के केन्द्र है। यहाँ दिए चित्र से ये तथ्य सहज ही समझ सकते हैं। यही **मनोमय-कोष** है।

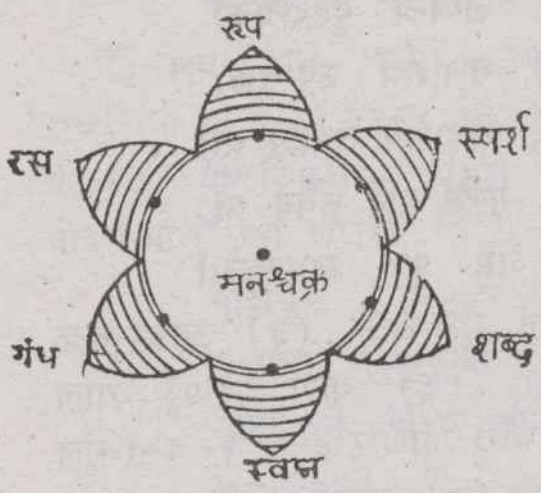

आकाश में चमकनेवाली विद्युत् की एक कम्पन के समय में मन में तीस खर्व कम्पनें होती हैं। विद्युत् की एक झलक डेढ़ करोड़ वॉल्ट की होती है, तो मन की एक कम्पन साढ़े चार सौ शङ्ख वॉल्ट की। इसी प्रकार विद्युत् की एक चमक में दो हजार पाँच सौ मिलियन किलोवाट शक्ति है, तो मन में साढ़े सात पद्म

मिलियन किलोवाट। मन की इस अपरिमित शक्ति से मानव असम्भव को भी सम्भव कर सकता है। चाहिए केवल उस शक्ति को केन्द्रित करके किसी दिशा में प्रेरित कर पाने की कला।

*

(१२) शरीर के ३२ आधारों में ध्यान से आरोग्य-लाभ

भौतिक देह लिए हूँ यद्यपि, जन्म-भूमि रोगों की जो।
नष्ट रोग हो जाते सारे, तुम्हें देखने-भर से तो॥१॥
देखो, जब भी **ज्वर** आता है, **शिर-पीड़ा** करती बेहाल।
महा-कालिका-रूप तुम्हारा, सब गायब करता तत्काल॥२॥
आँख बन्द कर पड़ा हुआ मैं, करता रहता हूँ यह ध्यान।
नील-वर्ण से ओत-प्रोत जग, नील-वर्ण का तना वितान॥३॥
नील-वर्ण तुम दिगम्बरा माँ, छिटकाती हो नील प्रकाश।
सहस्रार से, क्षण भर में ही, हो जाता है **ज्वर का नाश**॥४॥
होता है यदि **बात-ज्वर** तो, गहरा नीला काश दिखा।
हल्का नीला पित्त ज्वर में, देती हो तुम स्वयं सिखा॥५॥
नारङ्गी हो जाती हो तुम, होते ही मुझको **कफ-ज्वर**।
और ध्यान करते-करते ही, नष्ट रोग होता सत्वर॥६॥
और **कब्ज** यदि हुआ साथ में, करता हूँ बगला का ध्यान।
सहस्रार में पीता बन तुम, देती हो रोगों से त्राण॥७॥
पीताभा में आवृत जगती, सहस्रार से तज कर धार।
पीतामृत की, कर देती हो, माँ! **अजीर्ण** से तुम निस्तार॥८॥
एक बार **शीताङ्ग** हुआ तो, करके दश-दल में आह्वान।
बाला-रूप तुम्हारा देखा, रक्ताभा का करके ध्यान॥९॥
देखा रक्त-वर्ण की विद्युत्, प्रकट तुम्हारे तनु से हो।
रग-रग में है व्याप्त देह के, ओत-प्रोत जगती में जो॥१०॥
कुक्कुर-कास हुई है, जब भी, पीता-नीला मिली रही।
हरिताभा छाई जगती में, देखा, **खाँसी** नहीं कहीं॥११॥
जब-जब भी **अतिसार** हुआ है, हरिताभा ने किया विनाश।
जीर्ण और **अतिसार** हुआ तो, देखा नभ-सा स्वच्छ प्रकाश॥१२॥

लू लगने पर बढ़ी प्यास, **चक्कर मितली** ने तङ्ग किया।
किया ध्यान शबरी का मैंने, नीलाभा में जग डुबा दिया।।१३।।
स्वस्थ हुआ, ऐसे ही जब भी, **सर्दी** का माँ! जोर हुआ।
जकड़ी देह, निराशा **सुस्ती,** औ **जुकाम** ने तङ्ग किया।।१४।।
लाक्षा-रस आप्लावित तुमको, तजती हुई रक्त रज-धार।
आज्ञा में जब-जब भी देखा, हुआ रोग से तब निस्तार।।१५।।
नवमाधार मध्य करके ही, अम्ब दूतिका तनु का ध्यान।
अपना कर **स्वर-भङ्ग** मैं, गाने लगा कोकिला गान।।१६।।
पन्द्रहवें आधार मध्य जब, महा-कालि का ध्यान किया।
महा-जटिल **यकृत-रोगों** को, बिना कष्ट के जीत लिया।।१७।।
शत-दल श्रीगुरु-चक्र-ध्यान में, गुर्वम्बा को नील विलोका
मानस-रोग मिटाए सारे, अम्ब-कृपा से हुआ विशोक।।१८।।
अट्ठाइस आधार मध्य, माँ! देख भैरवी-रूप-प्रकाश।
सारे जटिल **वात रोगों** का, कुछ दिन में ही किया विनाश।।१९।।
और भैरवी-रूप तुम्हारे, से **घबराहट** हुई कभी।
तेरहवें आधार मध्य तो, शबरी शोभा लखी तभी।।२०।।
यों ही आद्या-रूप तुम्हारा, देख अनाहत में अक्लान्त।
अल्प दिनों में कर पाया हूँ, **हृदय-विकारों** को मैं शान्त।।२१।।
अर्श हुआ सतरह अट्ठारह, इक्किस पर नीला का ध्यान।
रक्त पड़ा तो इक्किस पर फिर, किया अम्ब बगला-आह्वान।।२२।।
देख सुषुम्णा में माँ नीला, **स्वप्न-दोष** को नष्ट किया।
प्रातः बगला सायं आद्या, सब **प्रमेह** को जीत लिया।।२३।।
बाइस पर बाला, अट्ठाइस बाला बगला का कर ध्यान।
आज **बुढ़ापे** में भी हूँ मैं, प्रमदाओं के लिए जवान।।२४।।
अम्ब, तिरस्कारिणी का बाइस, पर कर ध्यान **सुजाक** हटा।
गर्मी हुई लखी अट्ठाइस से, बत्तिस तक एक-जटा।।२५।।
पथरी में पीता बाला को, उन्निसवें में दे आधार।
चारों संध्याओं में करके, ध्यान किया रुज का संहार।।२६।।
वृश्चिक, सर्प, अग्नि, बाधा में, माँ शबरी का ध्यान किया।
यकृत, प्लीहा और **जलोदर,** से बगला ने त्राण दिया।।२७।।

दन्त-रोग में एक-जटा का, अष्टम में लेकर आधार।
औ' चतुर्थ में **नेत्र-रोग** के, किया विकट वारिधि को पार॥२८॥
क्षय जब हुआ दण्डिनी को तब, दशमाधार मध्य अवलोका
अट्ठाइस से बत्तिस तक तब, फैलाया नीला आलोक॥२९॥
चौथे दिन पीता बाला का, करता रहा युक्त कर ध्यान।
यक्ष्मा-रोग भगा गिनती के, दिन में लेकर अपने प्राण॥३०॥
मनश्चक्र के षड्-दल में जब, मातङ्गी करके अवतीर्ण।
रक्ताभा देखी तो मन की, नष्ट हुई **जड़ता** अति जीर्ण॥३१॥
गठिया, लकवा, कम्प-वात में, छिन्ना का मणिपूर-प्रकाश।
है अनुभूत किया करता है, थोड़े दिन में ही रुज-नाश॥३२॥
रक्त-पित्त में प्रातः आद्या, शेष तीन संध्या में और।
पीता का आलोक विलोका, मिटा रोग का सारा जोर॥३३॥
पीताम्बर-धारिणि भैरवी का, ध्यान भृकुटि में किया जभी।
नारङ्गी-आभावृत जग लख, मिटी **मृगी** की भीति सभी॥३४॥
मूत्राशय - रोगों में देखी, विंशाधार - मध्य काली,
सोलह-तेरह में शबरी ने, नीलाभा अपनी डाली॥३५॥
कहूँ कहाँ तक जो-जो भी, रुज हुए देह में जहाँ कहीं।
दश-विद्यात्मक-रूप तुम्हारा, क्रम से देखा तभी वहीं॥३६॥
बढ़ी **उष्णता, नेत्र-रक्तिमा,** जलन-युक्त निज रोगों में।
त्वचा पीत या **श्वेत पाण्डुता,** युक्त हुई जिन भोगों में॥३७॥
चञ्चलता, अतिसार, क्रोध की, प्रकृति हुई जब भी अनजान।
अट्ठाइस उन्निस में मैंने, किया अम्ब तारा का ध्यान॥३८॥
खुश्की या **मन्दाग्नि** हुई जब, भूख **नींद** से हुई विरक्ति।
घड़कन, जम्भाई-लक्षण हुए, लखी श्रीपीता - शक्ति॥३९॥
निद्राधिक्य, कब्ज या आलस, सुस्ती-लक्षण आदि हुए।
श्रीभुवनेश्वरि-रूप तुम्हारे, ये सब क्षण में नष्ट किए॥४०॥
मनश्चक्र के षड्-दल में, मा, धूम्रा, तारा, छिन्ना, अम्ब,
कमला, पीता, दशात्मिका का, सदा रहा है दृढ़ अवलम्ब॥४१॥
करके पञ्च-तत्त्व-लय विद्युत्, रेख-प्रणव की बन गुञ्जार।
मन-बुद्धि के ऊपर ले, आवर्त पहुँचती चिन्ताधार॥४२॥

निरालम्ब-पुर के ऊपर मा, नाद-बिन्दु से होकर युक्त।
क्षण भर में कर देती हो तुम, महा विकट भव-रुज से मुक्त।।४३।।

'सूक्ष्म-वायु-परिवर्तन-विज्ञान' शब्दावली में **'सूक्ष्म-वायु'**-शब्द से **आद्या-शक्ति कुण्डलिनी** का आशय है। **'परिवर्तन'** से आशय रूप-आकृति-वर्ण के परिवर्तन का है।

उपर्युक्त पद्यों में वर्णित रोगों में उक्त ध्यान उक्त आधार पर किया जाता है। **ध्यान** में **ध्यान-मूर्ति** की देह से **ध्यान-वर्ण-रूप** में **अमृत-मय प्रकाश** प्रस्फुटित होते देखना होता है। उक्त १ नील, २ पीत, ३ रक्त, ४ अरुण, ५ लाक्षा-रस, ६ श्वेत, ७ धूम्र, ८ नारंङ्गी, ९ कपिश, १० हरित, ११ पाण्डु, १२ कृष्ण, १३ पिशङ्ग, १४ बभ्रु, १५ किम्मीर और १६ चित्र-वर्ण के षोडश प्रकार के प्रकाशों का रोगानुसार भिन्न-भिन्न आधारों पर ध्यान करना होता है। **ध्यान-स्थल** से प्रस्फुटित उक्त विशिष्ट-वर्णीय प्रकाश सम्पूर्ण देह में व्याप्त होते देखना होता है। **श्री श्रीगुरु-चक्र-ध्यान** में अपने को **प्रकाश-मय** देखा जाता है, इसी प्रकार तत्तद्-वर्णीय **प्रकाश-पिण्ड** अपने को ध्यान कर सम्पूर्ण विश्व को उससे ओत-प्रोत देखना होता है। इस प्रकार **ध्यान** करने के फल-स्वरूप आश्चर्य-जनक ढङ्ग से साधक तत्काल **रोग-मुक्त** हो जाता है।

इसी प्रकार **मनश्चक्र** का ध्यान दृढ़कर उसके १ शब्द, २ स्पर्श, ३ रूप, ४ रस, ५ गन्ध और ६ स्वप्नात्मक षड्-दलों में जिस तत्त्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) की अल्पाधिकता के परिणाम में रोग हो, उसी दल पर उस **तत्त्व की अधिष्ठात्री मूर्ति का ध्यान** कर उसी प्रकार प्रकाश-प्रस्फुटन से **रोग-मुक्ति** हो जाती है।

वात-पित्त-कफात्मक रोगों के मूल-सूत्र यह है कि **वात (गति) पर बगला-ध्यान, पित्त (ऊष्मा) पर त्रिपुरा** या **छिन्ना-ध्यान** और **कफ (स्थायित्व)** पर **तारा (नील-सरस्वती) का ध्यान** आश्चर्य-जनक गुण प्रकट करता है। दृढ़ निष्ठा-पूर्वक अभ्यास करने पर अत्यन्त ही सरलता से **नाड़ी-शोधन** कर इस पद्धति से कोई भी स्वस्थ रह सकता है। यह सहस्रशः **अनुभूत प्रयोग** है।

* * *

उपयोगी प्रकाशन

हिन्दुओं की पोथी	२५.००
मुमुक्षु मार्ग (भाग १, भाग २)	५५.००
भैरवोपदेश	५०.००
क्या राम-चरित-मानस तन्त्र है?	३०.००
पूजा-रहस्य	५०.००
तन्त्र-कल्पतरु	४०.००
दीक्षा-प्रकाश	३५.००
साधना-रहस्य	३५.००
स्वर-विज्ञान	५०.००
मन्त्र-कोष	१५०.००
सचित्र मुद्राएँ एवं उपचार	१५.००
श्रीबगला-साधना	३५.००
नव-ग्रह-साधना	५०.००
महा-पर्व नवरात्र-विशेषांक	४५.००
महा-पर्व दीपावली-विशेषांक	३०.००
सौन्दर्य-लहरी के यन्त्र-प्रयोग	२०.००
श्रीयन्त्र-साधना	१५.००
श्रीयन्त्र-रहस्य	२०.००
विशुद्ध चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती)	२५.००
सप्तशती के विविध प्रकार	१५.००
श्रीबाला-कल्पतरु	३५.००
श्रीसूक्त-विधान	२०.००
श्रीरमा-पारायण	३५.००
दश महा-विद्या साधना	३०.००
दश महा-विद्या कवच	३०.००
दश महा-विद्या अष्टोत्तर शत-नाम	३०.००

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज - २११००६